घर की रानी

[स्त्रीत्व; विवाहित जीवन की समस्याएँ और उनका हल]

संशोधित और परिवर्द्धित नवीन संस्करण

लेखक

श्री रामनाथ 'सुमन'



प्रकाशक

साधना-सदन

इलाहाबाद

सवा रुपया

प्रकाशक : साधना-सदन, प्रयाग

अगस्त १६४१ : २१००

दिसम्बर १६४३ : १५००

दिसम्बर १६४४ : ११००

फरवरी १६४६ : २०००

मुद्रक : बी० के० शास्त्री; ज्योतिष-प्रकाश प्रेस, विश्वेश्वरगंज, बनारस।

मैं कहता हूँ

भूमिका लिखने का अगर फैशन है तो भूमिका लिखनी होगी पर मैं क्या लिखूँ ? जो कुछ मैं कहना चाहता हूँ, यह सारी पुस्तक ही उसकी भूमिका है। जो कुछ मैंने लिखा है, वह मेरे जीवन का रस है। मैं जो अनुभव करता हूँ, लिखता हूँ। स्त्रियों के प्रश्नों से, विवाहित जीवन की समस्याओं से मेरी दिलचस्पी पुरानी है। मैंने इनमें अपना बहुत समय लगाया है। सब तरह से इसे देखने-परखने की कोशिश की है।

पर इससे भी बड़ी बात यह है कि मैं स्त्रियों का एक हितैषी हूँ और अनुभव करता हूँ कि वे पथ-भ्रष्ट होकर अपने युग-युग के गौरव का तिरस्कार कर रही हैं। वे मानव-जाति की माता होने का अपना दावा छोड़ रही हैं। सभ्यता और संस्कृति के निर्माण में उनका जो स्थान है, उससे हट रही हैं। वे अपने को गलत देख रही हैं; गलत समझ रही हैं। और प्रतिक्रिया तथा प्रतिहिंसा की धारा में बहती जा रही हैं।

इस विस्मृत और मूर्छित नारी को लेकर सभ्यता का मेरुदण्ड टेढ़ा हो रहा है; समाज अशान्त और शाप-ग्रस्त है; गृह-जीवन हाहाकार से भर गया है। जिस गृहस्थ जीवन, जिस गृह की नींव पर सम्पूर्ण सभ्यता का ढाँचा बना, जब वही अन्धकार से भरा हो तब समाज में प्रगति क्या होगी !

तब हमारी पहली आवश्यकता गृह का पुनर्निर्माण करने की है और यह तब तक न होगा जब तक नारी यह समझती रहेगी कि गृह में उसका जो कार्य है वह नगण्य है। वस्तुतः संस्कृति और सभ्यता के निर्माण में

उसके गृह-कार्य का महत्व सब से अधिक है पर वह अदृश्य है; विज्ञापन उसका नहीं होता है इसलिए आज अपनी अभिव्यक्ति की भूखी नारी घबड़ा उठी है। पर नींव सदा अदृश्य ही रहती है और वही है कि जिसको लेकर महल की सारी जगमगाहट है।

जब १९३० में मैंने 'भाई के पत्र' लिखकर इस ओर बहिनों का ध्यान आकर्षित किया तब, इस दिशा में मेरे अनुभव बहुत थोड़े थे। हाँ, जो कुछ लिखा उसमें ईमानदारी ज़रूरी थी। कदाचित् उसी का फल था कि वह पुस्तक अत्यन्त लोकप्रिय हुई। हज़ारों स्त्रियों के जीवन में उसने प्रवेश किया और अनेक बहिनों ने वेद-वाक्य की भाँति उसकी बातों को ग्रहण किया। दूर-दूर की अज्ञात बहिनों के कृतज्ञ हृदयों के उद्‌गार मुझे प्राप्त हुए हैं—अत्यन्त मृदुल, अपनेपन से भरे उद्‌गार। सैकड़ों बहिनों का मैं सचमुच भाई बन गया हूँ। मुझे उनके जीवन में प्रवेश करने का अवसर मिला है; मुझसे गोप्य और अगोप्य प्रश्न पूछे गये हैं।

मैंने इनका उत्तर दिया है। भरसक उनको हितकर सलाह दी है। पर इन पत्रों की संख्या बढ़ रही है और देखता मैं यह हूँ कि गृहस्थ-जीवन प्रायः निरानन्द, सूना और विषादपूर्ण हो रहा है। घर-घर में वही बात। प्राणी अभिशप्त और दुखी; दिलों पर परदा डाले हुए; अन्दर-अन्दर कराहते पर दुःख की घूँट को अपने मान की खातिर पी जाते हैं। और यह वेदना, व्यथा और सञ्चित हाहाकार मवाद की तरह अन्दर जाकर समाज-शरीर को विषैला और निकम्मा कर रहा है।

प्रायः स्त्रियाँ यही पूछती हैं कि कैसे वे पतियों का हृदय जीत सकती हैं? बहुतों को अपना कोई दोष दिखाई नहीं देता। वे कहती हैं, मैं सब

कुछ करती हूँ फिर भी उपेक्षित हूँ। अब, आप बताइए क्या करूँ? उपदेश तो आप बहुत देते हैं पर मुझे उपाय तो बताइए।

मैं मानता हूँ, मेरे पास कोई जादू-टोना या मन्त्र नहीं है। न मैं जीवन में सुखी होने का कोई 'शार्ट कट' (जल्दी का रास्ता) जानता हूँ। अधीर होकर, घबड़ाकर स्त्रियाँ उसे नहीं पा सकतीं, जिसे पाना चाहती हैं। शान्त रहकर, धीरज के साथ प्रयत्न करने से बहुत कुछ सम्भव है। गृहस्थ-जीवन के लिए 'अमृतधारा'—जैसी सब रोगों की एक ही दवा नहीं है। संस्कार, स्थिति, मनोदशा के अनुसार अलग-अलग दवाइयाँ हैं। फिर भी कुछ बातें ऐसी हैं जिनका पालन करके बहुत-सी कठिनाइयाँ दूर की जा सकती हैं; बहुत-सी समस्याएँ हल की जा सकती हैं और गृहस्थ जीवन से पारस्परिक मनोमालिन्य, उदासीनता और पीड़ा का बहुत-सा मल दूर किया जा सकता है तथा स्त्रियाँ पतियों का हृदय जीत सकती हैं।

इस पुस्तक में ऐसी ही कुछ बातों और विधियों का वर्णन किया गया है। अधिकांश पत्र निजी रूप में लिखे गये थे। इसलिए उनमें एक निजी स्पर्श तथा ईमानदारी है तथा इसी कारण पुस्तक अपने आप, उपन्यास की भाँति, रोचक हो गई है।

मुझे आशा है, हज़ारों बहिनें इसे अपनायेंगी। पर उनका पंचमांश भी इससे पूरा लाभ उठा ले तो मैं अपना प्रयत्न सफल समझूँगा।

प्रयाग,
श्रीकृष्ण जन्माष्टमी
१५—८—४१

—श्री रामनाथ 'सुमन'

दूसरी आवृत्ति

मुझे हर्ष है कि 'भाई के पत्र' की भाँति ही 'घर की रानी' का भी अच्छा स्वागत हुआ है, और दो वर्ष में दो हज़ार प्रतियाँ, बिना साधन और विज्ञापन के, निकल गईं।

मैं चाहता हूँ कि विवाहिता तथा विवाह-योग्य बहिनें न केवल इसे पढ़ें बल्कि इसे गुनें—इसकी बातों पर विचार करें, उन्हें अपनायें। इससे और चाहे कुछ न हो, उनकी कुछ कठिनाइयाँ अवश्य हल हो जायँगी।

प्रयाग,
२०-१२-४३

—श्री रामनाथ 'सुमन'

तीसरा संस्करण

यह प्रसन्नता की बात है कि 'घर की रानी' का प्रचार दिन-दिन बढ़ रहा है। जो लोग समाज के संस्कार और निर्माण में लगे हुए हैं, उन्होंने इसका स्वागत किया है। कई जगह पुस्तक की प्रतियाँ बहिनों को बँटवाई गई हैं। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन और बम्बई विद्यापीठ के पाठ्यक्रम में भी इसे स्थान मिला है। आशा है यह पुस्तक स्त्रियों के जीवन में श्रेष्ठ संस्कार डालने में समर्थ होगी।

'घर की रानी' के इस संस्करण में कई जगह, विषय को और स्पष्ट और सुबोध बनाने की दृष्टि से परिवर्द्धन किया गया है।

—श्री रामनाथ 'सुमन'

इसमें क्या है ?

घर की रानी

"हृदय मे मधुर गन्ध, देह में मातृत्व का गौरव भरे, गृह के अणु-अणु में व्याप्त,-दीवारें जिसके हास्य से चमकती हैं, द्वार जिसके उदार हाथ से आतिथ्य के सत्कार की घोषणा करते हैं, तुलसी का चौरा जिसके अञ्चल-दीप से आलोकित है, और पति का प्रकोष्ठ जिसके स्नेह-राग से रञ्जित है, घर में समाई हुई; मिट्टी और पत्थर को सजीव करने वाली वह नारी आज कहां है ?"

: १ :

नारी-हृदय की आवश्यकताएँ

हृदय की प्यास कैसे बुझेगी ?

आज स्त्रियों की समस्या को लेकर समाज में एक तूफान, एक तहलका-सा मचा हुआ है। शायद ही कोई पत्रिका ऐसी हो, जिसमें स्त्रियों के लिए स्तम्भ सुरक्षित न हों— अब तो साप्ताहिकों और दैनिकों में भी प्रथा चल निकली है। स्कूल-कालेजों, सभा-सोसाइटियों में—सभी जगह—विवाद हो रहे हैं। प्रस्ताव पास किये जा रहे हैं। कौंसिलों में क़ानून बन रहे हैं। सब कुछ हो रहा है, पर यह सारा आन्दोलन, यह सारा बवंडर जीवन को ऊपरी सुविधाओं तक सीमित है, और इसीलिए हम देखते हैं कि इनके कारण स्त्रियों के सच्चे सुख में कोई वृद्धि नहीं हो रही है, न स्त्रियाँ स्त्रीत्व के सच्चे आदर्श की ओर उठ रही हैं। अशान्ति, अनीति बढ़ रही है—संघर्ष बढ़ रहा है, पर सुख के मीठे, अमल जल का वह सोता इस मरुभूमि में कहीं दिखाई नहीं पड़ता, जिसकी खोज में सब पागल हो रहे हैं, और जिसके पाये बिना हृदय की प्यास बुझाने का कोई चारा नहीं।

इस सारी अशान्ति और तहलके का कारण है, और बहुत छोटा कारण है। हम बातों को बढ़ाना—तूल देना सीख गये हैं। पश्चिम ने हमारे जीवन में उद्वेग पैदा कर दिया है, जिसके झोंकों में हमारी दृष्टि और हमारा मन अस्थिर हो रहा है और हम ऊपर की बातों को भेदकर नीचे नहीं पहुँच पाते। हमारी दृष्टि सतह पर रह जाती है। अन्दर, गहराई में, बात क्या है, यह देखने में हम असमर्थ रह जाते हैं।

बराबरी के अधिकार के लिए आवाज़ उठने लगी है। वह नारी, जो माता-रूपी खिले हुए फूल की पूर्वावस्था-कली है, पुरुष-रूपी फल से, जिसे उसी ने जन्म दिया है, बराबरी का दावा करने चली है! आज वह भूल गई है कि वह पुरुष की माता है अतः सदा उससे श्रेष्ठ है, और बराबरी के अधिकार की आवाज़ उठाकर खुद अपनी अश्रेष्ठता, अपनी कमज़ोरी का परिचय देने लगी है। इस भ्रमपूर्ण कल्पना ने विभिन्न क्षेत्रों में अधिकार मिलने की भी आवाज़ उठाई है। यही बुरी बात नहीं— स्त्रियाँ कौंसिल की सदस्याएँ बनें, स्त्रियाँ सामाजिक एवं सार्वजनिक जीवन-क्षेत्र में पुरुष के समान ही पदार्पण करें; म्युनिसिपैलटियों, नगर और ज़िलाबोर्डों में उन्हें स्थान दिया जाय, इत्यादि ऐसी माँगें हैं जिनके औचित्य से कोई पुरुष इनकार नहीं कर सकता, पर सवाल यह है कि क्या इन माँगों के पूर्ण हो जाने से नारी-हृदय की प्यास बुझ जायगी? इस सवाल का जवाब इसका निर्णय करने के पूर्व नहीं दिया जा सकता कि अधिकार की यह आवाज़ क्यों उठने लगी है, और उसके मूल में कौन सी मनोवृत्ति काम कर रही है।

तुम पुरुष की माता हो!

विचार करने से और वर्तमान नारी-आन्दोलन के रूप तथा उसे जाग्रत करने वाले उपकरणों पर ध्यान देने से सहज ही मालूम हो जाता है कि इसके मूल में वह प्रतिक्रिया काम कर रही है, जो पुरुषों की अन्यायपूर्ण भावना और क्रूर एवं निष्ठुर व्यवहार ने स्त्रियों में जगा दी है। इस आन्दोलन के विकास का कारण नारी-हृदय की वह अशान्ति है, जो पुरुषों के अनुचित व्यवहार से दिन-दिन गहरी होती जाती है।

पुरुषों के दुर्व्यहार की प्रतिक्रिया

यह विस्मृति और आत्मवञ्चना!

इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि पुरुष घरेलू जीवन के सदाचार से बहुत गिर गया है। समाज के, क्षेत्र में उसने लम्बे-चौड़े तर्कों, लम्बी स्पीचों और ऊँचे सिद्धान्तों की व्याख्या करने का ठेका जरूर ले लिया है, पर घर के अन्दर वह उदासीन, आत्मवञ्चनापूर्ण और अनुदार भावनाओं और वृत्तियों का अभिनेता है। मैंने अनेक समाज-सुधारकों को देखा है, और देश के कई प्रसिद्ध प्रान्तीय और भारतीय नेताओं के साथ भी रहा हूँ। मेरा अनुभव है कि इनमें से बहुत कम का घरेलू जीवन ऐसा है, जिसके बीच शान्त, संयत एवं सुखमय गृहस्थ धर्म पनप सके। या तो उनका अप्राकृतिक अथवा असाधारण विकास हो गया है, और उस तेज़ी की बाढ़ में उनके कुटुम्बी उनके साथ चल नहीं सकते हैं या शक्ति एवं सत्ता प्राप्त करने की धुन में उन्होंने अपनी नैतिक दिव्यता को भुला दिया है, और व्यावहारिक राजनीति एवं समाज-नीति के विशेषज्ञ बनने की चिन्ता में केवल तार्किक बन रहे हैं। मैं कई ऐसे नेताओं को भी जानता हूँ जो सार्वजनिक जीवन में अपने कष्ट-सहन और सादी जीवन-विधि के कारण तपस्वी और और साधुमना के नाम से विख्यात हैं और जिनकी ओर अंगुली उठाना साहस का काम है पर जिनका गृहस्थ जीवन अत्यन्त खोखला और दंभपूर्ण है। शिक्षित समाज की अजब हालत है। हमारी शिक्षा का क्रम कुछ ऐसा है कि हमारे अन्दर महत्वाकांक्षाएँ और उद्वेग तो खूब प्रबल कर रहा है, पर उनका शासन करने वाली नैतिक शक्तियों का विकास बिल्कुल रुक गया है। जीवन की बहुत ही अनुभवहीन और कच्ची अवस्था में युरोपीय नायिकाएँ, किताबों के परदे में, हमारे साथ हो जाती हैं, और

जब एक ओर उनसे हमारा परिचय बढ़ता जाता है, जब मिस रोज़ और जूलियट से हमारी मैत्री हो जाती है, सीता और सावित्री, दमयन्ती और अरुन्धती, मैत्रेयी और मीरा का नाम भी बहुत ही कम अवस्थाओं में हमारे कानों तक पहुँचता है। फिर जिस प्रलोभन और भोग के युग में हम रह रहे हैं, उसमें रहकर हमारा मन इन नवीन वस्तुओं की ओर स्वभावतः दौड़ता है। यह मानव स्वभाव की बहुत बड़ी कमज़ोरी है कि अज्ञात एवं रहस्यमय वस्तुओं और व्यक्तियों के प्रति उसमें सहज ही बड़ा आकर्षण उत्पन्न हो जाता है। इस प्रवृत्ति पर विजय पाने के लिए संस्कार, साधन और साधना की जरूरत पड़ती है, जिसकी ओर न किसी का ध्यान है, न किसी के पास इसके लिए समय है। इसका नतीजा, स्वभावतः, यह हो रहा है कि गम्भीर चिन्तन और विचार-शक्ति की कमी होती जाती है, और उद्वेग एवं भाव-प्रवणता की अनियन्त्रित वृद्धि हो रही है। जो सुधार किये जाते हैं, या जिन सुधारों के लिए आवाज़ उठाई जाती है, उनको समाज-निर्माण के आवश्यक सिद्धान्तों एवं मूलाधारों पर तौला नहीं जाता, केवल आवश्यकता और सुविधा, फैशन और बाह्य सुख का ही विचार किया जाता है। मन के प्रवाह की ऐसी डाँवाडोल अवस्था में राजसिक एवं तामसिक भावनाओं का बढ़ना स्वाभाविक है। सात्विक विचारों पर अंकुश बढ़ाये जा रहे हैं, क्योंकि उनसे हमारे अमर्यादित भोगों में बाधा पड़ती है और संयम तथा नियंत्रण के कारण हम सहसा उद्धत और उच्छृङ्खल नहीं हो पाते।

समाज-शरीर में दौड़ने वाली इन रक्त-वाहिनियों और मन में उठने वाली अस्पष्ट भावनाओं की जाँच करने पर यह सहज ही मालम हो जाता है कि आज-कल के नारी-आन्दोलन के

स्वाभाविकता नहीं, प्रतिक्रिया

अधिकारवाद में प्रतिक्रिया और होड़ का भाव प्रधान है। स्त्रियों की सुख-सुविधा के लिए अधिकारों की आवश्यकता है। उनके उचित विकास के लिए साधन चाहिए। पर मनोवैज्ञानिक धारा को देखिए, तब आपको मालूम हो जायगा कि माँग इसलिए नहीं उपस्थित की जा रही है कि उनकी खास ज़रूरत है या उनके बिना स्त्रीत्व का विकास नहीं हो सकता, बल्कि इसलिए कि प्रतिक्रिया की प्रवृत्ति समाज में पैदा हो गई है। पुरुष कई व्याह कर लें; एक को फूँक कर लौटते ही दूसरे व्याह की बातचीत होने लगे; बहु-विवाह-द्वारा अपना इन्द्रिय-रञ्जन करें; समाज की बहू-बेटियों की ओर लोलुप दृष्टि से देखने की आजादी उन्हें रहे, और स्त्रियाँ वैधव्य के ताप से तपें, एक जीवनव्यापी विवाह के मामले में भी उनकी सम्मति की परवा न की जाय! पुरुष बेवफा और कौटुम्बिक सदाचार से गिरकर भी सभामञ्चों पर, कौंसिलों में, नगर और जिला-बोर्डों में डींग मारें, दून की लें, सदाचारशास्त्र और नागरिकता के पवित्र अधिकारों पर व्याख्यान-बाज़ी करें, बड़े-बड़े आदर्शों की दुहाई दें, पर स्त्रियाँ अपनी साधारण मानवी आवश्यकताएँ प्रकट करने के अधिकार से भी वञ्चित रखी जायँ! पुरुष क्लबों में, सिनेमा और नाटकघरों में मनोविनोद और किलोल करें, सिगरेट के धुएँ के बीच अधम वासनाओं के सपनों को लेकर झूलें, 'ह्वाइट हार्स'[1] पर चक्कर काटें और स्त्रियाँ भोली-भाली घर के अन्दर बैठी पति की एकान्त चिन्ता और मंगल कामना में रात-दिन व्यतीत करें। एक तपस्या

---

[1] 'ह्वाइट हार्स' का शाब्दिक अर्थ है 'श्वेत अश्व' (सफेद घोड़ा)। यह एक विदेशी मदिरा है।

की आग में जले, दूसरा भोग की धारा में बहता चला जाय! यह कैसे हो सकता है? या तो पुरुष तपस्या करें या स्त्रियों को भी भोग की सुविधाएँ और आज़ादी दी जाय। यह आजकल का तर्क है, और यह आजकल के आन्दोलन की भाव-दिशा है!

इसमें सन्देह नहीं कि स्त्री-पुरुष के अधिकार अलग-अलग तुलाओं पर नहीं तौले जा सकते। समाज के नैतिक विकास में पुरुष और स्त्री का दर्जा बराबर रखे बिना काम नहीं चल सकता। इसके बिना नीति और सदाचार की परिभाषा बड़ी संकुचित हो जायगी। शायद उसकी महान् प्रेरणाएँ और व्यापक सन्देश रूढ़िवाद में बदल जायँ, जैसा प्रायः जगत् के इतिहास में हुआ है। सदाचरण कोई संकुचित और टुकड़ों में बँटा हुआ पदार्थ नहीं, वह मानव-जीव का समष्टिगत विकास है अतः यदि स्त्रियाँ सदाचारिणी रहें, और पुरुष सदाचार से होली खेलते रहें तो मानवी विकास की गति रुक जायगी। इसीलिए उच्च कोटि के विचारकों एवं नीतिज्ञों की दृष्टि में जो स्त्री के लिए अपराध है, वह पुरुष के लिए भी अपराध है। पति की अपनी पत्नी के प्रति उतनी ही जिम्मेदारी है, जितनी पत्नी की पति के प्रति है। दोनों को सामाजिक सदाचार का यह बोझ मिलकर उठाना पड़ेगा। यह नहीं हो सकता कि स्त्रियों को बढ़ावा देकर हम अपना बोझ भी उन पर डाल दें, और उनकी तपस्या की आड़ में गुलछर्रे उड़ायें।

दोनों की समान मर्यादा

पर ज़रा ठहरिए! अन्याय का प्रतिकार करते समय यह न भूलिए कि समाज-निर्माण और व्यक्ति के विकास में प्रतिक्रिया से उत्पन्न हुई मनोदशा दूर तक आपका साथ न देगी। वह ज्यादा से ज्यादा इतना करेगी कि पुरुषों को स्थानभ्रष्ट, पदभ्रष्ट कर दे,

उनकी भुजाओं को शक्तिहीन कर डाले, पर वह आपकी प्यास नहीं बुझा सकेगी ; आपका और उस पुरुष-वर्ग का, जिससे मिलकर आपको इस जगत में एक अद्भुत सृष्टि रचनी है, समुचित निर्माण न कर सकेगी। जिस आधार पर सदाचार की शिला रखी जाती है, जिस नींव पर समाज का सुदृढ़ भवन खड़ा किया जाता है, वह हजारों प्राणियों की जीवन-व्यापी तपस्या और मनन की ईंटों से चुनी जाती है। तिल-तिल गलकर, खून के छींटे दे-देकर उसे रचा जाता है। रूठने से, अधीर हो जाने से, क्रोध करने से, गालियाँ दे लेने से उत्थान और पतन के विश्व-व्यापी नियमों में कोई अन्तर नहीं पड़ता। प्रकृति हमारी तरह भावुक नहीं है ; उसके नियम हमारे मरने-जीने की तुच्छ गाथाओं के परे हैं। उसके निष्ठुर सत्य में हमारा गालियाँ देना, रोना और छटपटाना कुछ काम न देगा। जैसे आत्मनिर्माण के लिए बड़ी साधना करनी पड़ती है, वैसे ही समाज और गृहस्थ जीवन की रचना में भी त्याग करना पड़ता है। जीवन की रचना मज़ाकों और चुटकुलों पर नहीं की जा सकती; उसके लिए बड़ी साधना और तपस्या की ज़रूरत पड़ती है।

एक किन्तु

यह एक बड़े दुःख की बात है कि राष्ट्र के इस संक्रान्तिकाल में, जब सब पदार्थों का मूल्य नये सिरे से आँका जा रहा है, ऐसे विचारक अँगुलियों पर गिन लिये जा सकते हैं, जो शान्त एवं स्थिर-चित्त, चारों ओर देखकर, कारणों को और उनके भावी रूप एवं परिणाम को मिला कर, बहुत सोचने के बाद, समाज की जटिल समस्याओं पर अपनी राय प्रकट करते हैं। इसके विरुद्ध समाज में ऐसे 'सुधारक' बहुत हैं, जिन्होंने ज़ोरों से चिल्लाने

विधायक विचार-शैली का अभाव

और विधि-विशेष की हँसी उड़ाने को समाज-निर्माण एवं संस्कार का साधन बना लिया है। उनके पास जीवन की संस्कृति की कोई ऐसी योजना न मिलेगी, जिसमें वर्तमान दोष न हों। वे समाज में शालीन विचार-बुद्धि, संस्कारशील संयम को बढ़ाने वाली परिस्थिति लाने के लिए कोई विशेष उपाय भी न बता सकेंगे, पर समाज के प्रत्येक वर्तमान पहलू पर अपनी चिढ़ प्रकट करने को वे सदा तैयार हैं। वर्तमान समाज-विधि की उनकी आलोचना बड़ी हलकी होती है; उसमें सस्ते जोश का बाहुल्य होता है; विचार का अभाव रहता है। उनकी आलोचनाएँ एक प्रकार के असन्तोष को प्रकट करती हैं, और जिस जीवन-विधि से यह असन्तोष उत्पन्न होता है, उसे तोड़-फोड़ डालना चाहती हैं, पर इसके आगे उनका भविष्य अन्धकार में है, और रास्ता बन्द है। उसकी जगह कौन-सी जीवन-विधि अच्छी, उपयोगी और कल्याणकर होगी, इस पर या तो उन्होंने विचार नहीं किया, या किया तो बहुत ही हलकी बुद्धि से। जो एक दूसरी जीवन-विधि की ओर इशारा करते हैं उनमें उन लोगों की अधिकता है जो विदेशी, विशेषतः रूसी, जीवन-पद्धतियों से प्रभावित हैं। उन्होंने भारतीय समाज-निर्माण के मूल तत्वों का विचार ही नहीं किया है। गहरे आत्म-विस्मरण के कारण उनमें निजत्व और अपनी संस्कृति के प्रति गौरव का कोई भाव नहीं रह गया है। आत्म-विश्वास का लोप हो जाने से विदेशी बातें और विचार-धाराएँ उन्हें सहज ही विस्मित और मुग्ध कर लेती हैं।

इस मनोवृत्ति का फल यह हुआ है कि समाज में गिनती के लिए सुधारक तो बहुत-से पैदा हो गये हैं, पर वस्तुतः सुधार कुछ विशेष हो नहीं पाता है और जो होता है वह जीवन के

ऊँचे आदर्शों और संस्कारों से प्रेरित होकर नहीं वरन् व्यक्तिगत सुविधाओं तथा जीवन-सम्बन्धी बहुत स्थूल वासना-रंजन के लिए। रूप और बात एक होते हुए भी मनोवृत्तियाँ भिन्न हो सकती हैं और मानव-हृदय का विकास मुख्यत: उन्हीं पर निर्भर है। दो आदमी एक ही प्रकार देश-सेवा कर सकते हैं जब कि एक की प्रेरणा का आधार सच्चा सेवा-भाव होगा, और दूसरे के अन्दर यश के प्रलोभन नाचते होंगे। रूप एक होते हुए भी इससे बड़ी भिन्नता पैदा होती है। एक कल्याणकर मानवी सदाचरण का संस्कार समाज के अन्दर पैदा करेगा, और दूसरा एक पाखण्ड-प्रलोभनमय जीवन की सृष्टि करेगा।

नकली सुधारकों की बाढ़

मानव-जीवन में कई विभाग हैं। प्रत्येक विभाग की उत्कण्ठाएँ और महत्वाकांक्षाएँ भिन्न-भिन्न हैं। मनुष्य में बहुत ही स्थूल शारीरिक प्रेरणाएँ प्राय: प्रबल हो जाया करती हैं, और यदि संयम और विवेक से काम न लिया जाय तो मानसिक कोमलता और नैतिक क्षमता को प्राय: दबा लेती हैं; ये शारीरिक प्रेरणाएँ बरसाती नदी की धारा के समान प्रखर होती हैं, और अपनी धकेल ले जाने वाली शक्ति से प्राय: मनुष्य को अशान्त तथा अस्थिरचित्त करके गलत राह पर डाल देती हैं।

आज भी समाज में जो अनेक धाराएँ चल रही हैं, उनका सूक्ष्म विश्लेषण करके देखिए। उन पर गौर कीजिए, उनके अन्तराल में पैठिए। मालूम होगा कि स्त्री-सुधार की वर्तमान लहर में तीन-चौथाई भाग प्रतिक्रियात्मक भावनाओं का है। ऐसा सुधार कल्याणकर न होगा जो हमारे मानसिक स्वास्थ्य से नहीं, वरन् हृदय-रोग से उत्पन्न हुआ हो। सुधार वे ही हों, पर हम यह न भूल जायँ कि समाज के स्वास्थ्य और मनुष्य के

विकास एवं सदाचरण के नाम पर उनकी माँग की जा रही है, भोग और वासनारंजन के लिए नहीं।

स्त्री समाज की माता है। यह वह निर्झरणी है, जो दिन हो या रात, दुर्दिन हो या सुदिन, कठिनाइयों की चट्टानों को तोड़ती-फोड़ती बहती ही रहती है, और समाज की तलहटी को सदा हरा-भरा रखती है। माता का जीवन त्याग का जीवन है। वह जहाँ कष्ट का जीवन है; तहाँ महत्त्व का जीवन भी है।

स्त्री समाज की माता है

आजकल हम सिर्फ कठिनाइयों के बारे में चिल्लाते और स्त्रियों में बदला लेने की भावनाओं को जगाते हैं, पर कठिनाइयों का दूसरा पहलू भी है और वह इससे ज्यादा महत्वपूर्ण है। जहाँ स्त्री-जाति का जीवन त्यागपूर्ण, कष्टपूर्ण है, वहाँ वह अधिक महत्वपूर्ण, अधिक आदरणीय भी है। हाँ, यह बात ज़रूर है कि उन्हें बहुत-सा कष्ट अनिच्छापूर्वक, सामाजिक परिस्थिति के कारण, सहना पड़ता है; वे हर हालत में स्वेच्छा से कष्ट को अपनाती हैं, ऐसा नहीं कहा जा सकता। इसलिए उन बाधाओं को तो दूर करना चाहिए, जो उनके जीवन का सत्त्व, उनकी आशा और उत्साह को चूस डालती हैं। पर इस संस्कार में, इस सुधार में, विचार और विवेक, संयम और सदाचरण के महत्त्व पर ही ज़्यादा ज़ोर देना चाहिए।

इस प्रश्न का दूसरा व्यावहारिक पहलू भी है। और उस दृष्टि से इस पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने की आवश्यकता है। इसके लिए यह देखना चाहिए कि नारी-हृदय की आवश्यकता क्या है; किन बातों से उसे सुख-शान्ति और सुविधा मिल सकती है; क्या करने से उसकी प्यास बुझ सकती है; वे कौनसी बातें हैं जिनके सहारे उसका आध्यात्मिक, मानसिक और शारीरिक

विकास हो सकता है, और ये बातें क्या तथाकथित बराबरी का अधिकार पाने से पूरी हो जायँगी ?

जनन-प्रवृत्ति का महत्त्व

नारी-हृदय के विश्लेषण-कार्य में स्त्री की जननप्रवृत्ति (reproductive instinct) का स्थान बड़ा महत्वपूर्ण है। केवल मानवी संसार में ही नहीं, जीव और वनस्पति जगत् में भी किसी न किसी रूप में जनन प्रवृत्तिका प्राबल्य है। मनुष्य ने अपने विकसित रूप में इसका विभाजन जरा अच्छे एवं सुविधापूर्ण ढंग पर कर लिया है। यह जनन-प्रवृत्ति प्राणी की सबसे व्यापक एवं शक्तिमान उस प्रवृत्ति से जन्म लेती है, जिसे हम लोग वैज्ञानिक भाषा में 'अपने अस्तित्व की रक्षा का प्राकृतिक कानून' (Law of Preservation of Existence) कहते हैं। जगत् की रक्षा और स्वप्रसूत विकास (Automatic Evolution) के लिए यह प्रवृत्ति आवश्यक है। मातृत्व की भावना इसकी मूर्तिमान प्रेरणा है। इसीलिए हमारे यहाँ नारी का माता रूप ही सबसे भव्य, पवित्र, कल्याणकारी माना गया है और इसीलिए मानसिक, शारीरिक, नैतिक और आध्यात्मिक विकास के लिए मानव-जीवन को आश्रमों में बाँटने की व्यवस्था की गई थी।

दो आत्माओं का मिलन

अब यह मानी हुई बात है कि समाज का उद्भव और विकास नारी और पुरुष के सहयोग से ही हुआ है, और आगे भी सहयोग से ही हो सकता है। यह प्राकृतिक नियम है, और इसे समझने के लिए विवाद की आवश्यकता नहीं। दोनों का पूर्ण विकास और दोनों के जीवन की पूर्ति पारस्परिक सहयोग और आत्म-संयोजन (Fusion of Selves) से ही हो सकती है। नारी-हृदय की प्यास तभी मिट सकती है, जब वह अपने में

नारी की सच्ची प्रतिष्ठा करे, और वह नारी की प्रतिष्ठा तभी कर सकती है, जब उसे पुरुष-हृदय का पूर्ण सहयोग प्राप्त हो। यह एक सूक्ष्म और समझने योग्य आध्यात्मिक सत्य है, क्योंकि यहाँ से ही नारी-हृदय की वह गुत्थी सुलझती या हल होती है, जिसके सुलझे बिना वह अशान्त रही है, और रहेगी।

इसीलिए नारी-हृदय में आत्मार्पण की स्वाभाविक प्रेरणा होती है। यह कोमल प्रेरणा उसकी जनन-प्रवृत्ति के विभिन्न रूपों से पैदा होती है। नारी, पिता, पुत्र, पति, भाई किसी-न-किसी रूप में पुरुष को आत्मार्पण करने को अपनी आन्तरिक प्रेरणा और प्रकृति-द्वारा बाध्य है। पुरुष नारी की इस व्यापक जननप्रवृत्ति, आत्मार्पण की इस भावना को व्यावहारिक रूप देने वाला, भाव को क्रिया में बदलने वाला सहायक और साथी है।

इसलिए सबसे जरूरी बात याद रखने की यह है कि स्त्री-जीवन का उद्देश्य तब तक पूरा नहीं हो सकता, न तब तक स्त्री-हृदय का अभाव पूरा हो सकता है. जब तक वह पुरुष का सहयोग जीवन में न प्राप्त कर ले। यही हाल पुरुष का भी है किन्तु पुरुष-हृदय का संघटन कुछ इस प्रकार है कि वह स्त्रियों की अपेक्षा कम संवेदन-शील होता है, अतः वह चाहे तो स्वतन्त्र अस्तित्व कुछ समय के लिए रख भी ले, पर नारी बिना आत्मार्पण के अपने को अधूरा अनुभव करती है।

इन बातों का तात्पर्य यह निकलता है कि जीवन की रचना में स्त्री-पुरुष सहयोगी हैं, दोनों एक दूसरे के पूरक अंग हैं, दोनों का अस्तित्व न तो व्यक्तिगत जीवन के ऊँचे सुख की दृष्टि से अलग किया जा सकता है, न समाज एवं मानव-जाति के उत्थान के ख्याल से!

इसलिए पुरुष-नारी के बीच, साधारण अवस्था में, अधिकार

और बराबरी का तो कोई प्रश्न ही नहीं उठ सकता। दोनों मिलकर एक सम्पूर्ण इकाई की रचना करते हैं, जैसे भिन्न-भिन्न अंगों के मिलने से शरीर बनता है। इसमें यह बहस व्यर्थ है कि कौन छोटा है, कौन बड़ा। हाँ, उपयोगिता की मात्रा में थोड़ा-बहुत भेद हो सकता है, और मानव-जाति की रचना और प्रगति की दृष्टि से निश्चय ही नारी का स्थान पुरुष से अधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि नारी पुरुष की माता है, और जनन-प्रक्रिया में वह पुरुष की अपेक्षा अधिक कष्ट सहती, अधिक दान करती और अधिक बोझ उठाती है।

इस प्रकार जब नारी और पुरुष की समाज-निर्माण में और बहुत करके व्यक्तिगत जीवन में भी, कोई अलग-अलग महत्वपूर्ण सत्ता नहीं है; जब दोनों की शक्तियों के समन्वय, योग और संग्रथन से ही समाज के निरन्तर प्रगति-शील प्राणी की सृष्टि और निर्माण होता है, तब स्वतन्त्र व्यक्तित्व और बराबरी के अधिकार का तहलका मचाना न स्त्रियों के लिए कल्याणकारी हो सकता है, न अपने अधिकारों एवं मर्यादा का दुरुपयोग करना पुरुषों के लिए लाभदायक है। सवाल तो यह उठाना चाहिए कि स्त्रियों की तरह पुरुष को भी आत्मार्पण और आत्म-त्याग की आग अपने अन्दर जलानी चाहिए, जिसे वह अपनी बेवफाई और अधिकार-प्रियता के छीटों से बुझा चुका है। नारी-पुरुष के आदर्श सम्मिलन में पुरुषों की ग़लती से जो बुराई आ गई है, उसे दूर करने का वर्तमान अधिकारवाद का तरीक़ा एकांगी और पंगु है! वह बहिनों को उन अधिकारों से तो सजा देगा जिनके द्वारा पुरुष ने समाज में अपना एक अप्राकृतिक विशेषतापूर्ण स्थान बना लिया है! सम्भव है, बहिनें उसकी तरह ही उच्छृङ्खल,

एकांगी तरीका

अधिकार-प्रिय हो जायँ, पर इससे उनकी उस निरन्तर आग्रहपूर्ण उत्कण्ठा की प्यास न बुझ सकेगी, जिसके बिना उनका और पुरुषों, दोनों, का जीवन उद्देश्य-हीन और स्वाद-रहित है।

बीच में जो अनुचित विषमता पैदा हो गई है उसे भरने की जरूरत है, न कि बढ़ाने की। इस प्रकार के सुधारक भी यही कहते हैं कि पुरुषों का होश तब तक ठिकाने नहीं आ सकता, जब तक स्त्रियाँ भी उन्हीं के समान शक्तिमान न हो जायँ। उनका भी उद्देश्य एक है पर उनके साधन ऐसे हैं, जो उद्देश्य की पूर्ति की जगह बीच की गलत-फहमी और विरोध की खाई को और बढ़ाते जायँगे! यह तो वैसा ही हुआ कि दो ऐसे मित्रों में, जो अलग हो ही न सकते हों, एक के रूठने पर दूसरा अकड़ने लगे—"वाह, यही एक रूठने वाले हैं, हम भी नहीं बोलते!" इस प्रकार की अकड़ से दोनों का दुःख एवं मानसिक अशान्ति बढ़ती ही जायगी।

सौदा नहीं, प्रेम !

स्त्रियों की ओर से माँग तो इस बात की होनी चाहिए कि हमारी तरफ पुरुष भी अपने जीवन-व्यापी बन्धन के प्रति वफ़ादार बनें, हमारी तरह वे भी सम्मिलित संयुक्त जीवन में आत्मार्पण करें; हमारी तरह वे भी हमारे विवाहित जीवन की जिम्मेदारियों और बोझ को प्रेमपूर्वक निबाहें और उठायें; वे भी हमारे सच्चे जीवन-साथी बनें! यह ख्याल ग़लत है कि बराबरी का क़ानूनी अधिकार पा जाने पर ही प्रेम हो सकता है। मैं स्त्रियों के बराबरी के क़ानूनी अधिकार का कट्टर समर्थक हूँ पर यहाँ मैं कहना यह चाहता हूँ कि यह विवाहित जीवन की सफलता की कोई अनिवार्य शर्त्त नहीं है। प्रेम को और उसकी शक्ति को ऐसी शर्तों में बाँधकर न कभी रखा जा सका, न रखा जा सकता है। यह लेनदेन,

सौदा नहीं है। सौदे में जो सज्जनता दिखाई जाती है, वह यान्त्रिक—बनावटी—होती है! उससे मानव-हृदय के कोमल तन्तुओं का कोई सम्बन्ध नहीं होता, न इससे उनकी प्यास बुझ सकती है। नारी और पुरुष के जीवन की तुलना राष्ट्रों के जीवन से नहीं की जा सकती। राष्ट्रों की शक्ति के स्रोत यद्यपि व्यक्ति ही होते हैं, पर उनकी शासन और सञ्चालन-विधि यान्त्रिक नियमों के अधीन रहती है, इसलिए अधिकारों की जरूरत पड़ती है। शासन-संस्था चेतन की अपेक्षा जड़ अधिक होती है, क्योंकि राष्ट्र की स्थूल आवश्यकताओं के नियंत्रण से ही उसका सम्बन्ध होता है। व्यक्ति पूर्ण चेतन की एक इकाई [unit] है! उसका जीवन यान्त्रिक नियमों एवं अधिकारों की अपेक्षा आन्तरिक प्रेरणाओं एवं मानवी भावों पर अधिक निर्भर करता है अधिकार और शक्ति से उसके शरीर पर काबू किया जा सकता है, उसका हृदय नहीं जीता जा सकता।

नारी-हृदय की आवश्यकता यह है कि पुरुष का उसे विनम्र, प्रेममय और व्यापक सहयोग प्राप्त हो। पुरुषों की बेवफ़ाई के कारण उसके जीवन में जो एक प्रकार की निराशा, एक प्रकार का अभाव, एक प्रकार का सूनापन आ गया है, वह दूर हो! अधिकार और समता लक्ष्य नहीं, साधन-मात्र हैं। उनके मोह में लक्ष्य को भूलना, उसकी उपेक्षा करना उचित न होगा। माँग पुरुषों के सुधार की होनी चाहिए, न कि पुरुषों की तरह अपने बिगाड़ की। इससे बहिनों का देवत्व या श्रेष्ठ मनुष्यत्व और उनकी वह पवित्र आकर्षण-शक्ति नष्ट हो जायगी, जो सम्पूर्ण जगत् के सामने मातृत्व का आदर्श रखती आई है। और उस विभूति को खोकर भी, सम्भव है, वे पुरुषों को अपने हृदय के नजदीक न ला सकें और दोनों की अतृप्ति, अशान्ति बढ़ती जाय।

अभी तो जो कुछ हो रहा है, वह एक प्रकार का क्रोध, असन्तोष-प्रदर्शन और प्रतिक्रिया है। एक सीमा तक यह स्वाभाविक है। पर यह सुधार का संहारात्मक रूप है; उसके साथ, बल्कि उसकी जगह, रचनात्मक भावों एवं कार्यों को बिठाना चाहिए। मन की अस्थिर और असन्तुष्ट अवस्था में जो होता है, वही हो रहा है।[1] ऐसे समय आदमी प्रायः बहुत दूर बढ़ जाता है—सीमा लाँघ जाता है, और यह ख्याल नहीं रहता कि हमने किसलिए इसे शुरू किया था।

पुरुषों और स्त्रियों दोनों को इन बातों पर गंभीरतापूर्वक विचार करना चाहिए। पुरुषों को स्त्रियों के प्रति न्यायोचित कर्तव्यों का पालन करके इस विचार-कार्य के अनुकूल वातावरण उत्पन्न करना चाहिए; स्त्रियों को क्षणिक उत्तेजना में न आकर अपने आदर्श, अपने कर्त्तव्य और अपनी क्षमता पर विचार करना चाहिए। इसी में दोनों का कल्याण है। इसी में दोनों का सुख और शान्ति है।

---

[1] The great cry of the women is for "Equality of the sexes." I believe that it is, not altogether a fair cry, although I believe it is a natural one—inevitable because of the repression of women, their dominance by men—it is the sex revulsion, and all revulsions tend to go too far; they are in fact revolutions, and most revolutions are destructive rather than constructive.

—The True Ethics of the Sexes, 52.

पुरुष का सतत सहयोग नारी-हृदय की आवश्यकता है; प्रेम उसकी साधना है। इसके बिना नारी मातृत्व के ओज और नारीत्व के मधुर स्वाद से रहित हो जायगी, और अपनी अशान्ति एवं अतृप्ति को बढ़ा लेगी। इसके बिना वह आत्मदर्शन न कर सकेगी; स्वरूप को पहचान न पायेगी। इसके बिना वह दीपक बुझा ही रह जायगा जो आत्मदान और स्नेह से जलता है और जिसके प्रकाश में मानव ने, स्त्री-पुरुष ने, साथ-साथ सभ्यता की लम्बी मंज़िलें पार की हैं।

: २ :

घर की रानी

प्यारी कान्ता,

मैं पहले लिख चुका हूँ कि प्रतिक्रिया जब आती है तब इतने जोर से आती है कि सोचने-समझने और मनन करने का अवसर नहीं देती। वर्षा की हरहराती नदी के समान, वह कूलों और कछारों को तोड़ती, वृक्षों को गिराती चलती है। उसके तोड़ में जहाँ जो कुछ अस्वाभाविक और अनीति-मूलक होता है, बह जाता है, तहाँ जो कुछ वाञ्छनीय एवं श्रेयस्कर है, वह भी समाप्त हो जाता है।

संसार के अधिकांश विद्रोहपूर्ण आन्दोलन परिस्थितियों की प्रतिक्रिया के परिणाम-स्वरूप ही उठते हैं। इसीलिए उनमें क्रोध और हिंसा का भाव प्रधान रहता है। जोश और उच्छृङ्खल उत्साह उनका नेतृत्व करते हैं। उनमें विवेचन का, विवेक का प्राधान्य नहीं होता, वरन् प्रतिक्रिया के कारण उत्पन्न भावों की बाढ़-मात्र रहती है। इसीलिए उनसे जहाँ ध्वंस होता है, वहाँ निर्माण बहुत कम हो पाता है।

अनादि काल से नारी मनुष्यता के इतिहास की प्रधान नायिका है। उसको लेकर राष्ट्र उठे हैं और गिरे हैं; उसके आगे-पीछे धर्मों का अभ्युदय और पतन हुआ है; उसके साथ मानवता हँसी और रोई है और साहित्य उसको पाकर धन्य हुआ है और दलदल में भी गिरा है। मकड़ी के जाले की भाँति बिश्व का इतिहास नारी के केन्द्र-विन्दु के चारों ओर फैलता और

स्वतन्त्रता की पुकार

सिकुड़ता रहा है। आज भी नारी को लेकर संसार में एक आन्दोलन, एक हलचल है। आज पुरुप नारी को बन्धन-मुक्त कर देने को उतावला है। प्रत्येक देश, समाज, प्रान्त, जाति में नारी की स्वतन्त्रता की माँग है। पर जैसा कि पुरुष ने सदा किया है, यह स्वतन्त्रता का आन्दोलन उठाकर उसने नारी को पहले से भी अधिक गुलाम बना दिया है। आज नारी को पुरुष अपने मार्ग पर चलाना चाहता है; आज पुरुष ने स्वतन्त्रता के नाम पर उसका नेतृत्व अपने हाथ में ले लिया है और आज नारी ज़रा से नशे में अपनी मर्यादा, अपने मातृत्व का महान गौरव भूल चली है। अधिकार! कैसा मोहक, मायावी, जाल में फँसाने और नशे में विस्मृत कर देने वाला शब्द है यह! यह वह अस्त्र है जिसे पुरुप ने नारी को अचेत और विस्मृत करने के लिए छोड़ा है। और जिसको पाकर नारी मोहाविष्ट और निद्रालु हो चली है!

नारी को रमणी बनाने का प्रयत्न

मैं जानता हूँ, मेरे ये विचार पढ़कर बहुत से पुरुष चौंकेंगे। उनका चौंकना मैं स्वाभाविक मानता हूँ। उन्होंने नारी को सदा भोग की सामग्री के रूप में देखा है और आज प्राचीनों के विरोध के नाम पर भी वे दुःखिता, पीड़िता नारी की मानसिक अवस्था का लाभ उठाकर उसे मनोरञ्जन की, शृंगार की, अपनी तृप्ति की चीज़ बनाना चाहते हैं। आज विश्व में नारी-सुधार के नाम पर जो कुछ हो रहा है उसका अधिकांश *नारी को रमणी* बनाने का प्रयत्न मात्र है। पर जहाँ रमणी रूप अधिक आकर्षक, अधिक चञ्चल, क्षुब्ध जनों को अन्धा करने वाला है, तहाँ स्वयं नारी के सम्मान के अन्त का बीज भी उसी में छिपा है। जहाँ नारी का रमणी-रूप प्रधान है तहाँ अन्त

में नारी की ही हानि है;—तहाँ वह दो क्षण के मनोरञ्जन की चीज़-भर है; तहाँ वह पुरुष के भोग की सामग्री है; तहाँ वह पुरुष के ड्राइंग रूम की शोभा मात्र है; तहाँ उसका निजत्व नहीं, उसका व्यक्तित्व नहीं और तहाँ उसका मूल्य केवल पुरुष के दिल-बहलाव के रूप में है।

अजीब लहर

जब एक प्रवाह चलता है तो उसे चीर कर उठना प्रायः असम्भव हो उठता है। कुछ अशक्ति के कारण, कुछ फैशन एवं ज़माने की रफ्तार के कारण, कुछ परिस्थिति के कारण, कुछ अपना निजी कुछ विचार न होने के कारण और कुछ 'जो होना होगा होगा क्यों व्यर्थ चिन्ता की जाय' इस 'अजगर करे न चाकरी' वाली वृत्ति के कारण समय के प्रवाह के आगे सिर झुका देते हैं। आज भी दुनिया में नारी-जागरण के नाम पर जो कुछ हो रहा है उसके मूल में कुछ इसी तरह के भाव काम कर रहे हैं। आज, इस गति एवं अतृप्ति के युग में, जब मानव-अन्तःकरण एक प्रकार की खीझ एवं प्यास से विकल है, किसी के पास इतना समय नहीं कि वह दो क्षण ठहर कर सोच ले कि मैं कहाँ जा रहा हूँ। आज तो गति, न कि लक्ष्य, मनुष्य के जीवन में केन्द्रित है। नारी भी इस गति का शिकार हुई है। उसे भी कुछ चाहिए ! पुरुष अस्थिर, अतृप्त, अस्तव्यस्त और गतिमान है तो वह क्यों न हो ? उसे भी गति का आनन्द, उसके झोंकों एवं आँधियों में गिरने और उड़ने का स्वाद क्यों न लेने दिया जाय ?

आज संसार के अधिकांश आन्दोलन क्षुब्ध एवं पीड़ित, असन्तुष्ट एवं अतृप्त मानव-हृदय के उद्गार हैं। इसलिए उनमें प्रेम का नहीं, अधिकार का स्वर है। नारी-आन्दोलन में भी

वही हुआ है। आज नारी को भी समता चाहिए, अधिकार चाहिए। बिल्कुल उचित माँग है। कोई उल्टी खोपड़ी का और विकृत-हृदय व्यक्ति ही इसका विरोध करेगा। पर यह नारी अपने से पूछना भूल चली है कि क्या उसे स्नेह भी चाहिए, प्रेम भी चाहिए! अधिकार और समता तो अच्छी चीजें हैं पर इनका भी कुछ उपयोग और उद्देश्य है और इनको प्राप्त करने के भी मार्ग और साधन हैं। क्या यह अधिकार पुरुष की प्रतिद्वन्द्विता से प्राप्त हो सकता है?

प्रेम बनाम अधिकार

सच पूछिए तो नारी और पुरुष की समस्याएँ एक दूसरे से अभिन्न हैं। इन पर दो दो चार के फारमूला की भाँति विचार नहीं किया जा सकता। नारी के और पुरुष के प्रश्नों पर बिल्कुल स्वतन्त्र रूप से अलग-अलग विचार नहीं हो सकता। अनादिकाल से नारी और पुरुष दोनों ने अपना सम्मिलित मार्ग बनाया है और दोनों का समाज में संयुक्त स्थान, उपयोगिता और महत्व है। दोनों का जीवन, दोनों का उत्थान और भविष्य एक-दूसरे पर आश्रित हैं। इसलिए समाज की रचना एवं उसके विकास और भविष्य का विचार करते समय इनके टुकड़े नहीं किये जा सकते। दोनों के स्वभाव, प्रकृति, देन एवं जीवन-दृष्टि में भेद होते हुए भी दोनों एक दूसरे के पूरक और सहायक हैं; प्रतिद्वन्द्वी नहीं। नारी-समस्या पर या पुरुष-समस्या पर विचार करते समय कभी भूलना न होगा कि दो में से कोई दूसरे का बहिष्कार करके नहीं चल सकता; दोनों को एक-दूसरे का आश्रय जीवन में लेना ही पड़ेगा।

होड़ नहीं सहयोग!

तब नारी की आवश्यकताएँ क्या हैं?

एक सम्मानपूर्ण, और उससे भी अधिक एक प्रेमपूर्ण, कर्तव्यपूर्ण जीवन। जीवन की सुविधाएँ और जीवन का सच्चा आनन्द। समाज को श्रेष्ठ सन्तति देने के गौरव की स्वीकृति। जीवन की भौतिक सुविधाएँ।

पुरुष का अन्धानुकरण

जिसे भी उचित रीति से समाज के निर्माण की चिन्ता है वह नारी को ये अधिकार और सुविधाएँ देने का समर्थन अवश्य करेगा। समाज उसे अपाहिज रखकर देर तक खड़ा नहीं रह सकता। स्वयं पुरुष स्वस्थ नारी के बिना अशक्त है! समाज-निर्माण के किसी भी कार्य-क्रम में तब तक सफलता नहीं मिल सकती जब तक दोनों को विकास की सुविधाएँ न प्राप्त हों। इसलिए मानव-समाज के श्रेष्ठ स्वार्थों के नाम पर नारी को अधिक से अधिक सुविधाएँ मिलनी चाहिएँ। पर सुविधाएँ किस बात की? इस बात की कि जैसे पुरुष सच्चे पुरुष बनें, वैसे ही नारियाँ सच्ची नारियाँ बनें। अधिकार और समता का यही एक सदुपयोग हो सकता है। पर आज तो नारी पुरुष बनने के लिए विकल है और निश्चय ही उसकी इस मनोवृत्ति में लघुता की अनुभूति का भाव है। पुरुष के अज्ञान से अथवा परिस्थिति के कारण वर्तमान काल में नारी की जो दशा है उसमें उसने भ्रमवश यह समझ लिया है कि पुरुष नारी से श्रेष्ठ है। इसलिए आज वह पुरुष का अनुकरण करना चाहती है। जो कुछ पुरुष करे, वह स्त्री क्यों न करे—आज के नारी-जागरण का यह स्वर है। पर इस स्वर को अपनाकर नारी ने अनायास अपने को लघुता प्रदान की है। आज नारी प्रत्येक बात

में,—धूम्रपान एवं मदिरापान से लेकर कार्यालयों में कुर्सियाँ तोड़ने तक प्रत्येक बात में,—पुरुष क्यों बनना चाहती है ? क्या पुरुष उससे श्रेष्ठ है ? श्रेष्ठ तो नहीं था पर अपनी कल्पना एवं अधिकार के नशे में भूलती नारी ने, अप्रत्यक्ष रूप से, उसे श्रेष्ठ मान लिया है, यद्यपि ज़बान से वह पुरुष की भरपेट निन्दा करने और उसकी बराबरी का दावा करने को तैयार है। आज नारी-जागरण के इस क्षेत्र में पुरुष नारी का नेतृत्व कर रहा है या यों कहें तो ज्यादा अच्छा होगा कि भ्रमवश नारी पुरुष का अन्धानुसरण कर रही है, यद्यपि मुँह से कहती जाती है कि मैं पुरुष के पीछे चलने को तैयार नहीं; मेरा अपना व्यक्तित्व है। यह एक आश्चर्य्यजनक सत्य है कि जिस रूप में अधिकार का यह आन्दोलन हुआ है उससे नारी की स्वतन्त्रता घटी है, बढ़ी नहीं। उसने नारी के विशेष व्यक्तित्व का विकास नहीं होने दिया वरन् नारी में पुरुष को पैदा किया और बढ़ाया है। पुरुष का एक नमूना—एक माडेल—बना कर नारी उसका हर क्षेत्र में अनुकरण करना चाहती है। इससे स्वतंत्र होने की जगह, वस्तुतः, नारी परतंत्र होती जा रही है। अपनी शक्ति और क्षमता को भूल चली है।

नारी का सच्चा गौरव

इसका परिणाम यह हुआ है कि समाज में नारी की स्वतन्त्र प्रतिभा की जो ज्योति फैलनी चाहिए थी, वह टिमटिमाकर बुझती जाती है। व्यक्तित्व के स्वतन्त्र विकास की जगह एक प्रकार का अवाञ्छनीय मिश्रण हो रहा है; एक प्रकार की संकरता फैल रही है। इसने गृहस्थ जीवन को कुचलकर अधमरा कर दिया है। नारी भी अतृप्त है, पुरुष भी असन्तुष्ट है। उलटे विचारों के प्रचार के कारण बहुत से लोगों ने इस अतृप्ति को

ही 'क्रान्ति' समझ लिया है और जैसे बहुत बड़ी मंज़िल मार ली हो, इसका ढिंढोरा पीटते हैं और खुश होते हैं। परन्तु इस शोरगुल में असली बात तो ज्यों की त्यों रह गई है और वह तब तक हल नहीं हो सकती, जब तक इन समस्याओं के निर्णय की पहली कसौटी यह न हो कि स्त्री-पुरुष को एकत्र रहना है, एकत्र सृष्टि करनी है, एकत्र विकास करना है; जब तक दोनों के सम्बन्ध में अधिकार की जगह, ये शब्द न अच्छे लगें, बुरे मालूम हों तो यों कहा जाय कि अधिकार की अपेक्षा आत्मार्पण का, प्रेम का, सहानुभूति, परस्परावलम्बन और कर्त्तव्य का भाव प्रधान न हो। मानव-समाज की सृष्टि ही इसी आधार पर हुई है। उसके लम्बे विकास-क्रम में तो यह बात और स्पष्ट है।

देने में ही आनन्द **है** !

जीवन तो समझौतों की एक माला है। नारी जीवन तभी सुखी एवं तृप्त हो सकता है जब आत्मार्पण में वह अपने व्यक्तित्व को खोजे, पावे और प्रकाशित करे। पुरुष के लिए भी यही बात है पर स्त्री के लिए तो वह ध्रुवतारा-सा है। नारी का सम्पूर्ण जीवन त्यागमय है। इस देने में ही उसका आनन्द है। इसी में उसके मातृत्व का, पुरुष की माता होने का, गौरव सुरक्षित है। यहीं उसकी आत्मा का प्रकर्ष है। यहीं नारी वह है जो पुरुष नहीं है; न हो सकेगा।

इसलिए सहयोग, न कि प्रतिद्वन्द्विता और होड़ का भाव, स्त्री-पुरुष के समुचित जीवन के निर्माण की नींव में होना चाहिए। आज जो लोग समाज में दोनों के बीच एक प्रतिक्रियात्मक होड़ चलाना चाहते हैं, वे समाज की हानि कर रहे हैं और समाज की हानि चाहे न भी कर रहे हों पर स्त्रियों को भारी क्षति पहुँचा रहे हैं। मेरा मतलब यह है कि वे नारी में कुछ इस तरह की

भावना पैदा कर रहे हैं कि पुरुष अमुक काम करता है तो स्त्री क्यों न करे। किसी काम को करने की कसौटी यह नहीं रह गई है कि वह काम कैसा है—अच्छा है या बुरा, बल्कि यह कि पुरुष उसे करता है या नहीं। यह ठीक उसी प्रकार का तर्क है कि अमुक बड़े कहलाकर भी बुरे आचारण के हैं या नहीं! अच्छा हैं तो? तो क्या इसी हेतु हमारे लिए भी बुरा आचरण वाञ्छनीय है? नारी का ओज और नारी का त्याग, जिसकी समता पूर्व समय का औसत पुरुष नहीं कर सकता था, आज हमारे भ्रमात्मक प्रचार-विष के कारण नारी को खलने लगा है; आज तो उसकी कुछ ऐसी मनःस्थिति है कि पुरुष तो स्वार्थी है, बेवफा है और हमने तो सदा त्याग किया, अब कब तक त्याग करती रहें? इसलिए? उस त्याग को छोड़कर हम भी उनकी कोटि में क्यों न आ जायँ?

आज 'सुधरी' हुई स्त्रियाँ अपनी ओर, अपने गौरव की ओर नहीं देखती हैं। आज उनका सारा ध्यान पुरुष की ओर है—उसकी नक़ल करने में वे अपनी सफलता मानती हैं। उनकी दशा उस ईर्ष्यालु पत्नी की तरह है जो अपने पति का प्रेम न पाकर असन्तुष्ट और अतृप्त है और पति की प्रत्येक भली-बुरी गति-विधि पर दृष्टि रखने में ही उसका सारा समय जाता है। अत्यन्त व्यथाकारी फोड़ा जैसे रोगी का ध्यान अपनी तरफ से ज़रा भी दूर नहीं होने देता वैसे ही पुरुष ने उसका ध्यान अपने में केन्द्रित कर लिया है। फलतः वह अपने व्यक्तित्व का निर्माण ही नहीं कर पाती। उसका हृदय जल रहा है और वह सोचती है कि वे स्वच्छन्द होकर घूमते हैं, फिर मैं दासी बनी उनके भरोसे कबतक बैठी रहूँ? इसी अवस्था में रहने वाली दूसरी श्रेष्ठ विचारों की

दाम्पत्य सुख का रहस्य

पत्नी, पति के पतन से प्रभावित न होते हुए अपने कर्तव्य का ध्यान रखती है। उसकी विचार-धारा कुछ इस प्रकार चलती है कि मेरा धर्म तो अपने मन को पवित्र रखना है और मेरा काम इनके प्रति अपना कर्तव्य पालन करना है। इससे न केवल पत्नी का आत्म-विकास होता है वरन् पहले प्रकार की गर्वीली स्त्री गृह-जीवन को और अपने जीवन को सुखी करने की जिस चेष्टा में असफल होती है, दूसरी श्रेणी की स्त्री के लिए उसमें भी सफल होने की आशा रहती है। प्रायः इस त्याग, सेवा और कर्तव्य-पालन के कारण, किसी मनोवैज्ञानिक क्षण में, जब निराशा और अनुताप का भाव मन में प्रबल हो, पति का जीवन एक दम बदल जाता है। मैं ऐसी अनेक घटनाएँ जानता हूँ, जब पत्नी की वफ़ादारी और कर्तव्यशीलता ने मिटते हुए एवं निरानन्द गृह-जीवन को फिर आनन्द और उल्लास से भर दिया है और पतन के गर्त्त में गिरते हुए पति को ऊँचा उठाया है; जब ऐसा एक भी उदाहरण मेरे सामने नहीं जब पत्नी की समानता के, अधिकार के, होड़ के आचरण से गृह-जीवन का सुख एवं शान्ति बढ़ाने में, अथवा पति-पत्नी के टूटते हुए सम्बन्ध को सँभाल लेने में सफलता प्राप्त हुई हो। इसके विपरीत भारत की कई प्रसिद्ध नारियों को मैं जानता हूँ जो दोनों ओर से चलने वाली इस प्रकार की खींचातानी के परिणामस्वरूप दुःखी और अतृप्त हैं, सारी प्रसिद्धि को लेकर भी उनका हृदय प्यास से भरा है और आत्मा छटपटा रही है। बात यह है कि दाम्पत्य-जीवन के सुख की एक अलग कला है और उसकी नींव इस बात पर है कि पति-पत्नी दोनों में एक-दूसरे के दोष-दर्शन की जगह एक-दूसरे को सँभाल लेने की वृत्ति हो। यदि पत्नी में नहीं है तो पति को और पति में नहीं है तो भी पत्नी को यही उदारता और त्याग

का भाव रखना चाहिए, तभी दाम्पत्य जीवन सफल, सुखी और ऊँचा हो सकता है।

गृह का महत्व

दूसरी बात यह है कि आजकल स्त्रियों के नाम पर अथवा उनकी बराबरी के नाम पर जितने ज़हर समाज में फैलाये जा रहे हैं और जिन्होंने पुरुष एवं स्त्री के सम्बन्ध को मृदु एवं प्रेममय बनाने के स्थान पर दोनों के बीच की खाई को और गहरा कर दिया है, उनमें एक यह भी है कि स्त्रियों के ऊपर घरेलू जिम्मेदारियाँ लादकर पुरुष ने उनके आगे बढ़ने का मार्ग रोक दिया है। पर 'आगे बढ़ने' का अर्थ क्या है? कदाचित् कौंसिलों में जाना, अख़बारों में लेख लिखना, सभा-सम्मेलनों एवं संस्थाओं की अध्यक्षता, आफ़िसों में काम करना आदि! निश्चय ही ये बुरी बातें नहीं हैं और इनके दरवाज़े भी सबके लिए खुले होने चाहिएँ पर प्रश्न यह है कि क्या इनसे व्यक्ति अधिक विकसित हो जाता है? क्या उसकी आत्मा ऊँची हो जाती है? क्या उसके मानस का विकास होता है और क्या गृह-जीवन से ये अधिक महत्व की चीज़ें हैं?

समाज के निर्माण में गृह-जीवन का स्थान सबसे महत्वपूर्ण है। इसी नींव पर समाज एवं संस्कृति का सारा ढाँचा खड़ा है। किसी राष्ट्र के गृह-जीवन से उसकी सभ्यता, उसके वास्तविक सुख और उसकी अन्तःशक्ति का अन्दाज लगाया जा सकता है। यह वह स्थान है, जहाँ राष्ट्र पलता और बढ़ता है। यह राष्ट्र के भविष्य की, समाज की शक्ति की नर्सरी है। यहीं की मिट्टी में और यहीं की खाद से राष्ट्र की जीवन-शक्ति का पौधा अपना भोजन और अपनी पुष्टि पाता है। यहीं की स्फूर्ति से जीवन का ओज है; यहीं के प्रेम से जीवन की मृदुता है; यहीं के सौन्दर्य

से जीवन की श्री है। समाज को चाहे जिस रूप में ढाल लेने का यह कारखाना है।

फिर यह आश्चर्य की बात है कि समाज-शक्ति के सबसे आवश्यक एवं शक्तिमान विभाग को अपने हाथ में पाकर भी शिक्षित स्त्रियाँ उसे जेलखाना और क़ैद के नाम से पुकारें और वे पुरुष, जिनके पास विचार तो नहीं हैं पर जो बहाव में बहने के या प्रचार-वृत्ति के कारण, स्त्रियों के आगे आकर खड़े हो गये हैं, जेलखाना और कैद-जैसे नामों से स्त्रियों को डरावें और उनकी निम्नवृत्तियों को जाग्रत करें। इस गृह-जीवन की अधिकारिणी होकर जिस नारी को समाज-शक्ति की कुंजी अपने हाथ में रखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ हो, वह उससे दूर भागकर अशक्त और दुर्बल क्यों बनना चाहती है? क्या वह चाहती है कि माता का सन्तति के ऊपर पिता से कहीं अधिक जो प्रभाव होता है, उसे वह खो दे? यह नीचे गिरना है या ऊपर उठना है? इससे शक्ति बढ़ेगी या घटेगी? इससे नारीत्व का गौरव बढ़ेगा या कम होगा?

पर असल बात तो यह है कि वर्तमान सभ्यता जहाँ हमें अधिकार का पाठ पढ़ाती है वहाँ उस अधिकार के साथ लगी हुई जिम्मेदारियों का बोझ उठाने की ओर हमें घर की रानी प्रवृत्त नहीं करती। शक्ति के साथ, गौरव के साथ सदा कष्ट और दुःख रहेंगे। यह नहीं हो सकता कि हम अधिकार और शक्ति तो चाहें परन्तु उसके लिए कठिनाइयाँ सहने और त्याग करने को तैयार न रहें। भारतीय गृह में नारी को जो अपूर्व अधिकार मिला था, वह उसने अपने त्याग, कष्ट-सहन एवं कठिनाइयों और बाधाओं के बीच उठने की अपनी क्षमता के कारण ही प्राप्त किया था। आज की सभ्यता

की गति भोग की ओर है ; वह अन्तर्मुखी न रहकर बहिर्मुखी हो गई है ; तत्त्व की जगह उसमें रूप की उपासना की प्रवृत्ति है। इसलिए अधिकार तो सब चाहते हैं पर उस के लिए त्याग करने को कोई तैयार नहीं !

गृह तो बहिनों की शक्ति का स्रोत है। यहाँ समाज की माता एवं कुटुम्ब की अन्नपूर्णा के रूप में उसके दर्शन होते हैं। यहाँ वह उस महिमा से महिमामयी है जो आत्मार्पण एवं त्याग में मूर्तिमान होती है। जहाँ भी समाज को शक्तिमान और सुदृढ़ बनाने का आयोजन होता है वहाँ इस गृह-जीवन का निर्माण सबसे पहले करना पड़ता है। नारी का प्रकर्ष गृह में है। संसार के महान् पुरुषों की सफलता का रहस्य इसी गृह-जीवन में मिलने वाली उनकी शिक्षा एवं संस्कारों में छिपा है।

युग के प्रवाह में अप्राकृतिक तत्वों की जो तीव्र धारा है उसने गृह-जीवन की जड़ को हिला दिया है। इसीलिए, इस गृह-जीवन के अशक्त एवं दुर्बल हो जाने के कारण, आज का

माता का अंचल

युवक परमुखापेक्षी, परिस्थितियों के आगे झुक जानेवाला, कठिनाइयों के बीच रो देने वाला, चिड़चिड़ा और असंयमी हो गया है। वह बोलता बहुत है, चाहता अधिक है, पर करता कम है; और देना, त्याग करना चाहता नहीं; जानता नहीं। यह दुर्भाग्य की बात है कि उस पर से उस माता का अंचल हटता जा रहा है जिसकी छाया में पलकर और जिसके त्याग का दूध पीकर वह शक्तिमान होता था। गंगा की भाँति समाज को सतत नारी के मातृरूप ने शक्ति का, जीवन का, सर्वश्रेष्ठ सन्तति का दान किया है। उसके इस कार्य की तुलना और किस कार्य से हो सकती थी ? उसकी छाती का अमृत पीकर समाज के बच्चे उठते थे। वह उसी का गौरव था

और आज भी भारतीय गृह में थोड़ा बहुत जो सौख्य एवं सौन्दर्य सुरक्षित है वह भी उन्हीं बहिनों और बेटियों, पत्नियों और माताओं के कारण है, जिनका त्याग प्लेटफार्मों पर नहीं बोलता, बल्कि बच्चे के जीवन में अंकुरित होता और पनपता है, जो अधिकार की नहीं, प्रेम की भूखी हैं—उस प्रेम की जिससे बढ़कर कोई अधिकार नहीं और जिसे पाकर और कुछ पाने की इच्छा नहीं रह जाती।

इसलिए मैं अपनी उन बहिनों से जिनमें त्याग और संस्कार की लौ है, कहता रहा हूँ कि तुम्हारा सच्चा स्थान गृह ही है। मेरी आशा हिन्दू-गृह की उन लाखों बहिनों से है जिनमें बिना किसी प्रतिदान की आशा के भी त्याग की ज्योति जल रही है और जिनके आत्मार्पण और आत्मोत्सर्ग के ही कारण भूले हुए पुरुषों का तथा इस प्रकार टूटते एवं उखड़ते हुए गृह एवं दाम्पत्य जीवन का पुनरुद्धार सम्भव है।

: ३ :

रोज़ का घरेलू जीवन : दो चित्र

प्यारी कान्ता,

गृहस्थ-जीवन बड़ा जटिल होता है। सहानुभूति और प्रेम के होते हुए भी अक्सर स्वभाव-दोष से लोग इसमें असफल होते हैं। इस सम्बन्ध में आज दो चित्र मैं तुम्हारे सामने रखना चाहता हूँ जिससे बहुतेरी उलझनें स्पष्ट हो जायँगी।

मध्यम श्रेणी का एक घर। विश्वनाथ गृह-स्वामी है। लक्ष्मी गृहणी; बिल्कुल अपढ़ भी नहीं है; हिन्दी मिडिल तक पढ़ी-लिखी है। सीना-पिरोना जानती है। घर के काम-काज में मन लगता है! विश्वनाथ बी० ए० तक पढ़ा, औसत दर्जे की बुद्धि रखने वाला, जीवन के युद्ध का एक लाचार सैनिक! कोई ख़ास लक्ष्य उसके सामने नहीं। किसी सरकारी आफ़िस में नौकर है। पैंसठ रुपये कमा लाता है जो आजकल के ज़माने में कुछ मामूली काम नहीं—और पतियों के लिए इससे ज़रूरी और काम भी क्या है! एक नौकर है। घर चलता है; कोई ख़ास रुकावट नहीं। यह भी नहीं कि विश्वनाथ की आँखों में कोई दूसरी औरत हो। वैसी आकांक्षाएं केवल रोमैंटिक कहानियों के नायकों की विरासत में आई हैं। मामूली आदमी इतनी उड़ान क्योंकर भरे। उसे अपने बाल-बच्चों और पेट से फ़ुर्सत कब मिल पाती है। दिन कमाने में और रात खाने या खाना बनाने वाली की सेवा में। बस, एक साँचे का जीवन, जो कुछ सोचने समझने की फ़ुर्सत

नहीं देता। और चूँकि सोचने-समझने की फुर्सत नहीं देता, इसीलिए निभ रहा है।

अभी विश्वनाथ ज़िन्दगी में ज़रा सुभीते से लग पाया था और सन्तोष की शायद आधी ही साँस उसने ली हो कि पन्द्रह साल की कुमारी पुत्री सुशीला उसके सामने आकर खड़ी हो गई है। अमृत-सा उसका सौन्दर्य मानो विश्वनाथ और उससे भी ज्यादा लक्ष्मी, और सबसे ज्यादा सगे-सम्बन्धियों और पड़ोसी महिलाओं, के लिए ज़हर फैलाता और लुटाता आया है। छाती पर साँप लोट रहा है। 'लड़की कब किसकी हुई है! वह तो परायी थाती है।' विश्वनाथ खाता-पीता ज़रूर है पर बचत कुछ ऐसी नहीं कि सुशीला उसके लिए कोई समस्या न उपस्थित करती हो। बाज़ार में पतियों की कुछ कमी नहीं पर दाम चढ़ा हुआ है। पैसे अच्छे दीजिए, एक क्या दस लड़के तैयार हैं। लड़के जो ब्याहे नहीं जाते, खरीदे जाते हैं। तब पैसे कहाँ से लाये? और लड़की है कि बिना पिता की स्थिति की कुछ परवा किये बढ़ती ही जाती है।

परायी थाती

पर बार-बार लक्ष्मी कह चुकी है—जैसे हो लड़की को पार तो लगाना ही पड़ेगा। मैं अपने लिए तो नहीं कहती? मेरी तो जैसी बीत रही है, बीत रही है। पर इतनी बड़ी लड़की को कब तक घर में बिठाओगे? लोग अँगुली उठाते हैं। मौसी आई थीं, बुआ आई थीं। कहती थीं, तुम लोगों के गले घूँट कैसे उतरती है? और बात भी सच है। सुशीला सयानी हो गयी है। कुछ डौल करना ही पड़ेगा।

बात तो सच है। कुछ डौल करना ही पड़ेगा पर कैसे यह डौल होगा। निम्न मध्यम श्रेणी के गृह में बचत कर लेना

उतना ही कठिन है जितना बच्चे पैदा कर लेना सरल है। दुर्भाग्य की तरह संतति की वृद्धि होती है पर सौभाग्य की तरह रुपया कभी-कभी ही दिखाई देता है। ख़ैर; डौल करना ही पड़ेगा इसलिए कर्ज़ का बन्दोबस्त करने और लड़का खोजने में आज पन्द्रह दिन से विश्वनाथ परीशान है।

चुभने वाला एक व्यङ्ग

आज सुबह नौ बजे इसी सिलसिले में उसे कहीं मिलने बुलाया गया है। विश्वनाथ उधर से ही आफ़िस चला जायगा, इसलिए खाने की जल्दी है। उधर एक बच्चे की आँखें उठ आई हैं और वह रो-रो कर घर सिर पर उठा रहा है। ख़ुद लक्ष्मी की तबियत भी ख़राब है। इस प्रकार के गृह में, जहाँ जीविका का प्रश्न भी रोते-गाते हल होता है, गृहणी केवल अपनी निष्ठा और धैर्य के बल पर जीती है अन्यथा उसे साँस लेने का अवसर भी मुश्किल से ही मिलता है। ख़ैर; राम-राम करके खाना तैयार हुआ तब पौने नौ हो रहे थे। आज विश्वनाथ ने जल्दी के लिए चाय भी न पी थी। रात-दिन की परीशानी, अब यह देर उसे खिझाने को काफ़ी थी। पर वह दिल को उभरने न दे रहा था। अपने को मारे और दबाये हुए थाली पर बैठा। पहला ग्रास। अरे! नमक इतना कि खाना ज़हर हो गया। और न चाहते हुए, रोकते-रोकते, मुँह से निकल जाता है:—"आजकल किसी नशे में रहती हो क्या?"

लक्ष्मी, थकी-हारी, खीझ उठी। चुप रहकर बात ख़तम करने की कोशिश की पर चुप रहा नहीं गया। जिस मानसिक स्थिति में वह थी उसमें यह व्यङ्ग! नशा वह क्या करेगी? किस बूते पर नशे में होगी! नशा लायक जो कुछ उसके पास था, सब एक-एक करके वह दे चुकी है। अब जब

कुछ नहीं रह गया है तब नशे की बात उसके सारे शरीर में ज़हर की भाँति फैल गई। न बोलना चाहते हुए भी वह कहती है:—"हाँ, तुमने मुझे नशे के लायक़ रखा ही है न! मज़दूरनी से भी गये-गुज़रे दिन बीत रहे हैं। मुझे क्या नशा होगा? नशा तो तुम्हें होगा, तुम कमाते हो। मेरे पास क्या है? लौंडी किस बिरते पर नशा करेगी?"

कभी-कभी ऐसा होता है कि आसमान बिलकुल साफ़ है। निखरी और इठलाती हुई चाँदनी है कि देखते-देखते बादल घिर आते हैं और अँधेरा हो जाता है। ज़िन्दगी में रोदन और पीड़ा भी ऐसा ही होता है। जब हम सुख की के अदृश्य छिद्र कल्पना में ज़मीन-आसमान के क़ुलाबे मिला रहे होते हैं तभी मानो हमारी सारी आशाओं आकांक्षाओं को कुचल कर दिल को हिला देने वाला अन्धकार घिर आता है। जहाँ क्षण-भर पहले दिल हँस रहे थे और आँखें नाच रही थीं तहाँ जीवन के अदृश्य छिद्रों से रोदन और पीड़ा की वर्षा होने लगती है। अभी दस मिनट पहले विश्वनाथ कैसी उमङ्ग में था और लक्ष्मी ने हज़ार निराशाएँ होते हुए भी जल्दी-जल्दी और उत्साह से सब काम करने की कोशिश की पर उनकी सब उमङ्गों पर दुर्भाग्य ने क्षण भर में पानी फेर दिया!

लक्ष्मी की बात ने बात बढ़ा दी। विश्वनाथ बोला—"मैंने तुम्हारे लिए क्या नहीं किया? रात-दिन के इतने झगड़े मैं क्यों पालता हूँ? क्या अपने लिए? और तुम ज़बान चलाती जाती हो। ग़लती करना और उस पर ये ज़हर-भरी बातें! मैं तो तुम्हारी लड़की के लिए परीशान और तुम्हारा दिमाग़ आसमान पर है!"

लक्ष्मी चाहती है कि न बोले पर कैसे न बोले—"मेरे लिए तुमने कुछ नहीं किया। किया होगा अपने आराम के लिए! किया होगा अपने बच्चों के लिए! मेरे लिए

बेकाबू ज़बान

क्या? जब से आई, तुम्हारी गृहस्थी में जान खपा रही हूँ। माँ-बाप का घर छूट गया; भाई-बहिन सब सपने हैं! किसी का मुँह नहीं देख पाती हूँ फिर भी रात-दिन का जलना!"

और गुस्से में विश्वनाथ थाली फेंक देता है। कहता है:—"माँ-बाप! माँ-बाप! माँ-बाप कुछ पूछते तो तुम आसमान पर पैवन्द लगातीं। चली जाओ माँ-बाप के घर। तुम औरत ही ऐसी हो कि जहाँ जाओ, सब मिट्टी कर दो! हो गया विवाह; मैं आफिस जाता हूँ।"

लक्ष्मी—"करो या न करो। करोगे अपनी लड़की का; न करोगे अपनी लड़की का। मुझ पर क्या एहसान! मेरे तो जो दो-चार गहने हाथ-पाँव में हैं वे भी मैंने देने को रख छोड़े हैं! और माँ-बाप का नाम तुम न लो। बुरे हैं तो, भले हैं तो, मेरे माँ-बाप हैं! तुम उनको ताना न देना। मुझे मारो चाहे काटो, माँ-बाप को मत घसीटना!"

और इनके बाद आँसुओं का भयङ्कर विस्फोट। करम फूटने और ज़िन्दगी के हज़ारों अभावों, कष्टों और स्मृतियों का स्मरण! पति किंकर्तव्यविमूढ़। भूखे, असफलता की खीझ

बेचारा विश्वनाथ!

से भरे हुए पलायन! नारी के ब्रह्मास्त्र के सामने ढहती हुई तर्क और विवाद की इमारतें! बेचारा विश्वनाथ!

विश्वनाथ आफ़िस जा रहा है। जा क्या रहा है, रोज़ उधर जाने के अभ्यस्त पाँव उधर उठते जाते हैं। उसका मन टूटा,

बिखरा हुआ है। वह सोचना चाहता है पर सोच नहीं पाता। यह क्या हो गया ; कैसे हो गया ! उसे कहाँ जाना था ? विवाह की समस्या, बहुत सम्भव है, हल हो जाती। क्यों उसने बात बढ़ने दी ? जब मैं रामप्रसाद की कोठी पर होता तब लक्ष्मी से उलझ रहा था। आखिर उसका दोष भी क्या था ? बच्चा रो रहा था, खुद उसकी तबीयत अच्छी न थी ; सुशीला रोटी बनाने की अवस्था में न थी ; इन झंझटों में याद न रहा होगा कि नमक डाल चुकी है। दोबारा पड़ गया होगा। ज़रा-सी ग़लती हो गई; कुछ जान-बूझ कर तो उसने किया ही नहीं। आदमी है ; ग़लती हो ही जाती है। मैंने फ़िजूल इतनी बातें बढ़ा दीं। आख़िर इससे फ़ायदा क्या हुआ ? ब्याह तो करना ही पड़ेगा और लक्ष्मी भी छूट नहीं सकती। तब मन खराब करने और जलने से क्या लाभ ?

बेचारी लक्ष्मी !

पति का सूखा मुँह। रोता हुआ बच्चा। गिरी हुई तबियत—और यह काण्ड ? न रुकने वाले आँसू और इन सब के बीच अपनी लाचारी। पति—वह बन्धन जिससे छुटकारा नहीं है, जिससे छूटना नहीं है—से पराजित, उन्हें और अपने दोनों को दुःखी करने की खीझ से जलती हुई नारी ! बेचारी लक्ष्मी !

पति ने गुस्से में थाली हटा दी और उठकर चले गये। जब-तक क्रोध था, बाँध रुका रहा। गुस्से में उसने बीमार रोते बच्चे को पीट दिया। पीट तो दिया पर पीटते ही मानो जो कुछ दुःख अन्दर घनीभूत हो रहा था वह गल कर आँखों से टपकने लगा। बच्चे को छाती से चिपटा लिया और खाट पर पड़ रही।

आँसू समाप्त हो गये। दुःखी, संतप्त मन फिर पति की ओर दौड़ा। वर्षा हो चुकी। बादल बिखर गये ! आकाश साफ हो

गया। अब लक्ष्मी सोच रही है—यह सब क्या हो गया? कैसे उत्साह से उन्होंने सुबह उठकर मुझे जगाया था। बेचारे कितने दिनों से व्याह की चिन्ता में सो नहीं पाते हैं। रात-दिन बदहवास दौड़ते फिरते हैं। न खाने का ठीक, न पहनने-ओढ़ने का ख्याल। दो बातें उन्होंने कह दीं तो क्या हो गया? आख़िर ग़लती तो मेरी ही थी। माना, मैंने जान-बूझकर नहीं की पर भूल तो हुई ही। चुप रह जाती तो क्या बिगड़ जाता? उनसे जो कुछ हो सकता है, करते ही हैं और खुद अपने लिए क्या खर्च करते हैं? उनका दिल दुखाया। बे-खाये-पिये चले गये। सारे दिन की जानतोड़ मेहनत। उस पर बिटिया के व्याह की चिन्ता। फिर ये झगड़े! मैंने व्यर्थ तिल का ताड़ किया। वे मेरे हैं; वे न कहेंगे तो कौन मुझे कहेगा? उन्हीं के साथ रहना है; उन्हीं के चरणों में मरना है।

एक क्षणिक प्रतिक्रिया

लक्ष्मी के मन में आया कि उड़ कर पति के पास पहुँच जाऊँ; उनके चरणों पर गिर पड़ूँ और कहूँ कि मुझसे ग़लती हुई; मुझे क्षमा कर दो। मैं अभागिनी हूँ जो आपको दुःखी किया। बुरी हूँ तो, भली हूँ तो तुम्हारी हूँ।

पर घटना घट चुकी थी और तड़पने के सिवा कोई चारा न था।

और इन दो चक्कियों की रगड़ में वह बच्ची सुशीला घिस गई। उसने अभी जीवन में क्या देखा है, क्या पाया है। बचपन की देहरी भी पूरी तरह लाँघ नहीं पाई है। यौवन के आगमन की हल्की-सी सुगन्ध देह में भर रही है। व्याह की चर्चा सुन-सुनकर अपने ही अन्दर सिमट-सी रही यह लड़की! आशाओं और निराशाओं, उत्कण्ठाओं और अनिश्चितताओं के बीच हिचकोले खाती हुई!

बेचारी सुशीला!

न जाने आगे क्या आने वाला है। और यह जो सामने है, कुछ बहुत शान्तिप्रद नहीं। आज ही यह काण्ड हो गया। जीवन की अनिश्चितता के झंझावात में अपने सम्पूर्ण अस्तित्व के साथ, विकम्पित बेचारी सुशीला !

सोचती है—मैं कैसी अभागिन हुई। मेरे कारण बाबूजी बदहवास हैं; अम्माँ झीकती हैं। आखिर यह व्याह राहु बन कर मेरे घर पर क्यों आने को उतावला है। मेरी सखियाँ गंगा और नर्मदा, तो अभी पढ़ ही रही हैं। मुझसे कुछ बड़ी ही होंगी। क्या उनके माँ-बाप भी इसी प्रकार उनके लिए लड़ते होंगे। बेचारे बाबूजी ! बे खाये-पिये चले गये। उनका क्या दोष था ? और अम्माँ ! वह बेचारी भी क्या सचमुच अपराधिनी हैं ? तबीयत ठीक नहीं है; मुन्नू रोता है। निकल गईं दो बातें। ··· पर बाबूजी ने ही क्या कह दिया था ? उनकी क्या ग़लती ?··· दिन-भर जिस आदमी को मेहनत करनी है उसे अगर ठीक वक्त पर, ठीक तरह से खाना भी न मिले तो वह कैसे क्या करेगा ? तब दोष किसका है ? मैं ही अभागिन इसकी जड़ में हूँ। गरीबों के घर लड़कियाँ पैदा क्यों होती हैं ? मैं लड़की न होती तो अम्माँ क्यों रोतीं और बाबूजी क्यों बेखाये-पिये उठ जाते ? हे भगवान !

मैं लड़की क्यों हुई ?

दिन भर घर की वही हालत रही जो किसी के मर जाने पर होती है। सूना, साँयँ-साँयँ करता घर। बच्चा बिलबिलाता रहा, लक्ष्मी ने मुँह में दाना न डाला और नौकर मारे डर के दुबक रहा। सुशीला ने कई बार हिम्मत की, माँ की चारपाई तक गई। पर शोक का जो पहाड़ घर पर आ टूटा था, वह उठाये न उठा।

घर या श्मशान

लक्ष्मी बार-बार सोचती रही—वे भूखे-प्यासे चले गये। उनका दोष नहीं। दोष मेरा है।

विश्वनाथ बार-बार सोचता रहा—मैंने बात बढ़ाई। उसका दोष क्या था। दोष मेरा है!

सुशीला सोचती थी—दोष किसी का नहीं, मेरा है।

बच्चा क्या सोचता? हाँ, उसे एक ऐसे वातावरण का अनुभव जरूर हो रहा था जिसमें दम घुटता हो।

और बेचारा बच्चा!

कल सब उससे हँसते-बोलते थे, उसे प्यार किया जाता था, उसके ठुमकने पर माँ चूमती थी और उसके अटपटे शब्दों की लोग नकल उतारते थे। उसकी शैतानियाँ स्वर्ग की सृष्टि करती थीं। आज क्या बात है? माँ वही है, घर वही है, दीदी वही है। तब······तब?

× × ×

दिन भर का थका विश्वनाथ घर लौट रहा है। रास्ते भर सोचता जाता है, जो हो गया, हो गया। अब हँसी-खुशी फैला दूँगा। मुन्नू को प्यार करूँगा। लक्ष्मी से कहूँगा—ग़लती मेरी ही थी। मेरा चित्त आज कल स्थिर नहीं है। न जाने मैं क्या-क्या बक गया। भूल जाओ!

पर घर आते ही ठिठक जाता है। घर है कि श्मशान! चीजें बिखरी हुई। कहीं कोई आवाज़ नहीं। जैसे वर्षों से इसमें कोई रहता न हो। भयानक और बोझीला वातावरण। दीवारों पर उदासी छाई हुई। जो कुछ सोचता आ रहा था, सब विस्मृत। दिल बैठा जा रहा है। क्रोध नौकर पर उतर रहा है।

लक्ष्मी, जो सोचती थी, ग़लती है, क्षमा माँग लूँगी, मुन्नू को गोद में दे दूँगी, उसकी किलकारियों से घर गूँज उठेगा, उठ भी न सकी। पड़ी ही रह गई।

गृह-स्वामी का कैसा स्वागत था ! दुर्भाग्य विवेक पर छा गया था। बेचारा गृहपति ! बेचारी गृहलक्ष्मी !

और अब न चाह कर भी सुबह के दृश्य की पुनरावृत्ति होती है। दुःख घनीभूत हो गया है। बातें बढ़ गई हैं। जीवन से प्रकाश का लोप हो गया है। गृह मानो दीप-शून्य भूतों का डेरा हो ! निराशा, असफलता और खीझ से छटपटाता प्रत्येक प्राणी !

× × × ×

क्या यह चित्र एकाकी है ? ऐसे भारतीय गृह कितने हैं जिनके आँगन में, जिनकी दीवारों पर इस चित्र की परछाइयाँ न दिखाई दें ? वे भाग्यवान गृह, जो अपनी दयनीय कूपमण्डूकता में भी, पचास साल पहले तक, हमारी सभ्यता के मुख्य प्रकाशस्तम्भ थे, आज कहाँ हैं ? *हृदय में मधुर गन्ध, देह में मातृत्व का गौरव भरे, गृह के अणु-अणु में व्याप्त,—दीवारें जिसके हास्य से चमकती हैं, द्वार जिसके उदार हाथ से आतिथ्य के सत्कार की घोषणा करते हैं, तुलसी का चौरा जिसके अंचल-दीप से आलोकित है, और पति का प्रकोष्ठ जिसके स्नेह-राग से रञ्जित है, घर में समाई हुई, मिट्टी और पत्थर को सजीव करनेवाली—वह नारी आज कहाँ है ?*

वह नारी !

उसकी जगह यह चित्र !—यह चित्र, जो समाज और देश की पुकार, नारी की स्वतन्त्रता की घोषणा और पुरुष की बढ़ती हुई सहानुभूति, के बीच भी घर-घर फैलता जाता है। क्यों है यह चित्र ? जब लक्ष्मी चाहती है, इस वातावरण का अन्त हो, विश्वनाथ चाहता है, हँसी-खुशी फैल जाय तब फिर सबह की घटना की पुनरावृत्ति क्यों है ?

यहाँ देखते हैं तो विश्वनाथ अच्छा है; लक्ष्मी अच्छी है। दोनों में दोनों के लिए सहानुभूति, शुभाकांक्षा है। तब भी इतनी व्यथा है, इतना हाहाकार है। दोनों सफलता चाहते हैं, सुख चाहते हैं, शान्ति और तृप्ति चाहते हैं पर असफल हैं, दुखी हैं, अशान्त और अतृप्त हैं।

क्यों ऐसा है ?

[२]

पर इस दुःख के, अतृप्ति के भूकम्प में कुछ गृह बच भी गये हैं। गहराई न रह गई हो, पर दुःख की काली छाया उनकी दीवारों के बाहर ही रह जाती है।

विश्वनाथ के घर से, मुश्किल से, एक फर्लाङ्ग के फासले पर कमलाकान्त रहते हैं। किसी कोठी में पचास रुपये पाते हैं।

एक दूसरा चित्र !

वह हैं, गायत्री है, दो बच्चे हैं। आदमी हैं; आदमी की कमज़ोरियाँ भी उनमें हैं; आदमी के गुण भी उनमें हैं। यार-दोस्त हैं; जिनमें बैठकर हा-हा हू-हू कर लेते हैं; पान-पत्ता भी हो जाता है। जब-तब ताश और शतरञ्ज भी जमता है। लक्ष्य इनके सामने भी कोई नहीं है। कमाते हैं, खाते हैं। कुछ इस तरह के आदमी जिसे सदैव माँ की—सँभालने वाली की—ज़रूरत हो। गायत्री है कि इन्हें हाथों पर लिये रहती है।

यह गायत्री लक्ष्मी-जितनी गम्भीर भी नहीं। चञ्चल है। हँसी-मज़ाक और चुहल की आदत है। कभी इसे छेड़ा, कभी उसे गुदगुदाया। सहेलियों में प्रिय, कपड़े-लत्ते की शौकीन, रमणीयता से पुलकित !

कमलाकान्त के मित्र एकत्र हैं। खेल हो रहा है। कमलाकान्त आते हैं और गायत्री से कहते हैं—कुछ जलपान कराओ। गायत्री कहीं जाने की तैयारी में है। घर में उपयुक्त सामान भी नहीं। पर कहती है—ज़रा खेलो, अभी तैयार करती हूँ। और झटपट चाय और पकौड़ियाँ तैयार करके बाहर भेजवा देती है।

एक दिन की बात है कि कमलाकान्त कोठी से भरे हुए आये। सेठ से कुछ कहा-सुनी हो गई थी। तिस पर नये महीने का प्रारम्भ था। घर में कुछ न था। तनख़ाह मिली न थी। आते ही नौकर से उलझ पड़े। बच्चे दौड़े आये तो उन्हें घुड़क दिया। कुछ गुस्सा, कुछ गर्मी के दिन की गर्मी!

गायत्री तुरन्त समझ गई कि कुछ हुआ है। उत्तेजित हैं। नौकर को दूसरे काम के लिए कह कमलाकान्त के पास पहुँची। कोट उतार कर रखा। पंखा झलने लगी। दो मिनट बाद एक तश्तरी में कुछ जलपान और नीबू का शर्बत लिये आई। कमलाकान्त गुस्से में थे और चाहते थे कि तश्तरी हटा दें पर उत्तेजना की कोई सामग्री उन्हें न मिली। जलपान और शर्बत के बाद कुछ तरावट पहुँची। पारा नीचे उतरा। गायत्री ने अवसर देखकर बातें शुरू कीं:—

प्रसन्न करने की यह कला!

"आज तुमने दाढ़ी भी नहीं बनवाई। बाल बढ़ रहे हैं।··· आजकल तुम उदास रहते हो। चेहरा सूख गया है। अपनी तन्दुरुस्ती की परवा नहीं करते। मैं कहती हूँ, इस नौकरी में बड़ी जानमारी, बड़ी हाय-हाय है। रात-दिन की भाग-दौड़! मैं जानती हूँ कि हालत ऐसी नहीं जो छोड़कर काम चले पर पहले तुम हो, पीछे सब कुछ है। तुमसे ही सब है। न हो, दूसरी हल्की नौकरी कर लो। कुछ कम मिलेगा तो क्या? रूखे-सूखे

खा लेंगे, मोटा पहन लेंगे"······मतलब इसी तरह की हजार बातें। गायत्री के मुँह से मोटा-झोटा पहनने का आश्वासन—शौकीन गायत्री के मुँह से ! मीठे शब्द, और पति के लिए गहरी सहानुभूति से भरे हुए !

और कमलाकान्त हैं कि मानो धारा में बहे जा रहे हैं। उनके न चाहते हुए भी दिल का गुबार ऊपर उड़ा जा रहा है। वह ठोस रहना चाहते हैं पर द्रवित हो रहे हैं; वे उदासी को बाँधे रखने की चेष्टा करते हैं पर उसकी गाँठें खुलती जा रही हैं। उनके चारों ओर उनके मन को विजड़ित करके एक स्वप्नलोक बन रहा है। ठोस बर्फ गलकर पानी हो रही है; कटुता मृदुता में बदलती जा रही है; काँटे फूल हुए जा रहे हैं।

पन्द्रह मिनट,—और सेठ जी दृष्टि से ग़ायब हैं; कहा-सुनी और खीझ समाप्त हो गई है। कमलाकान्त का मुरझाया दिल हरा हो उठा है और चेहरा चमकने लगा है। वही हँसी-खुशी का वातावरण, वही चुहल, वही कुलेल।

इसी तरह एक दिन खाने में नमक ज्यादा हो गया। ठीक वही अवस्था थी जिसमें लक्ष्मी और विश्वनाथ को हम देख चुके हैं। कमलाकान्त के चेहरे पर बल आया, उन्होंने मुँह बनाया। गायत्री झट बोल उठी—"अरे नमक क्या ज्यादा हो गया ? च-च-च। एक तरफ कर दो, मैं खा लूँगी। दो मिनट ठहर जाओ, मैं परवल छौंके देती हूँ...नहीं, नहीं, देर न होगी; अभी हुआ जाता है। तुम्हें मेरी कसम। बिना सब्जी का खाना कैसा लगेगा। मुझे बड़ा दुःख होगा। मैं भी कैसी हूँ ; दो कौर तो तुम खाते हो, वह भी ठीक न बना सकी।" और गायत्री के चेहरे पर दुःख की गहरी रेखाएँ अंकित हो गईं !

—और न परवल छौंकने की जरूरत पड़ी : न ठहरने की।

कमलाकान्त पत्नी की मधुरता में डूब गये। दिल पर गुस्से की जगह एक भीनी सुगन्ध छा गई और भोजन में बोलता अधिक नमक मानों शान्त हो गया। कमलाकान्त बोले—"नहीं नहीं, रहने दो। तुम्हें यों ही क्या कम परेशानी है। दुःख की क्या बात है? काम में भूल हो ही जाती है, और कुछ ऐसा ज्यादा नमक नहीं है।" सारा भोजन उन्होंने बड़े स्वाद से किया और हँसते-हँसते काम पर गये!

प्यार की गुदगुदाहट

इसी गायत्री की लड़की उमा का व्याह पारसाल हुआ। न सास, न ससुर। अकेला घर। गायत्री को कोई कठिनाई न हुई। सहेलियाँ जुट गईं। गायत्री हाथ न लगाती पर हर एक को बोध होता कि मैं कोई काम नहीं कर रही हूँ। गायत्री कभी इनके पास आई, कभी उनके पास गई।—"अरी कम्मो! तूने अभी तक जलपान नहीं किया! सुबह से लगी है। चल हट, ऐसा काम मैं तुझ से नहीं कराती।" और कम्मो कहती—"भाभी! खिला-खिलाकर आप मुझे बीमार कर देंगी। सुबह से दो बार तो जलपान कर चुकी।"—"नहीं नहीं, चल।" दो मिनट बाद—"प्रभा भाभी! क्या भैया आकर हाथ जोड़ेंगे तब उठोगी? उठो, मैं बैठती हूँ।" और भाभी कहतीं—"चल चल! बड़े तेरे भैया आये हाथ जोड़ने वाले! क्या वे भी कमल हैं!...अभी अभी तो बैठी हूँ। क्या उमा मेरी बिटिया नहीं है? क्षण भर में मानसी के पास, उसकी ठुड्डी ऊपर उठाती हुई—'बहिन! आज चाँद को ग्रहण क्यों लग रहा है?"—"चल तुझे सदा चुहल की रहती है।"—"नहीं-नहीं बोल, क्या लड़कर आई है?"—"क्या तू बैठने न देगी। मैं चली जाऊँगी गायत्री।" फिर दूसरी तरफ नौकर से—"शङ्कर! अरे भैया!

मुझे तो याद ही न रही। तूने कुछ खाया-पिया नहीं, रात से पिल रहा है। तुझी पर तो सब बोझ है। चल, कुछ खा ले। रहने दे, वह काम। तू भी बहू की तरह शर्माता है! माँग क्यों न लिया?" "नहीं-नहीं बहू जी! शर्म की क्या बात? मैंने सोचा, जरा हलवाई को मिठाइयों के ठीक समय पर पहुँचाने की याद दिलाता आऊँ तब खुद माँग लूँगा।"

इस तरह उमा का व्याह हो गया और किसी को पता भी न लगा कि मैं रात-दिन खपती रही हूँ। सब कुछ हाथों-हाथ हो गया।

गायत्री की गृहस्थी के इतिहास में बिखरे हुए ऐसे अनेक उदाहरण इकट्ठे किये जा सकते हैं। उन सब का जिक्र करना न यहाँ संभव है, न आवश्यक। इतना ही देखना है कि लक्ष्मी और विश्वनाथ तथा गायत्री और कमलाकान्त दोनों की स्थिति करीब क़रीब एक सी है पर दोनों के घरों में अन्धकार और प्रकाश की भाँति अन्तर है।

यह अन्तर क्यों है?

समवेदना और सहानुभूति तो लक्ष्मी और विश्वनाथ के बीच भी उससे कुछ कम नहीं है जितनी गायत्री और कमलाकान्त के बीच है। आर्थिक परिस्थिति में भी पहला घर दूसरे घर से अच्छा ही है। तब भी दो तड़पते हैं, जब दूसरे दो खुश हैं।

समता और विषमता

बात असल में यह है कि गृहस्थ-जीवन की सफलता के लिए केवल निजत्व की भावना, ममता या सद्भावना ही आवश्यक नहीं है। इससे भी अधिक आवश्यकता है इनके आचरण की। गृहस्थ-जीवन का सुख टैक्ट (कौशल) और मानसिक नियन्त्रण पर निर्भर

है। किस समय बोलना चाहिए, किस समय चुप रहना चाहिए, किस समय हँसना चाहिए, किस तरह, कब और क्या बोलना चाहिए, जो स्त्री-पुरुष इन बातों को जानते हैं वे चैन की जिन्दगी बिताते हैं। गायत्री इन्हीं से अपने पति को नचाती थी और जिस समय लक्ष्मी अपनी सद्भावना के होते हुए भी समझ न पाती थी कि घिरते हुए बादल किस तरह हटाये जा सकते हैं तब गायत्री उन्हें चुटकियों में उड़ा देती थी। उदाहरण लें:—झगड़ा हो जाने और विश्वनाथ के चले जाने पर लक्ष्मी अनुभव करती थी कि उसने गलती की है; वह विश्वनाथ को खुश भी करना चाहती थी; वह उससे क्षमा माँगना चाहती थी, वह उसकी गोद में सिर रखकर रोना चाहती थी; वह अनुभव करती थी कि जो कुछ हुआ है, अच्छा नहीं हुआ है और इस तरह चल नहीं सकता। सदिच्छा उसमें थी, सहानुभूति उसमें थी, और ममत्व भी उसमें था पर रास्ता उसका बिल्कुल उलटा था। जब वह इस कटुता को दूर करना चाहती थी तब उसे सन्ध्या को थके-माँदे आने वाले पति के लिए हँसते हुए और स्वागत को उत्सुक गृह की रचना करनी थी; उसे वातावरण हँसी-खुशी का रखना था। पर वह अपने रोदन और दुःख को लिये खाट पर पड़ी रही; अपने दुःख की अवधि बढ़ाती रही और सारा घर दुःख, पीड़ा, शङ्का और अन्धकार की तरङ्गों में डूबता उतराता रहा। जिससे मिलने को उत्सुक थी, वह आया तो उठ भी न सकी। सब के मुँह पर जब प्रकाश की किरणें खेलती होतीं तब सबके चेहरे मलिन थे। मन उसका अनुकूल था पर कार्य सब प्रतिकूल थे! इसके विरुद्ध गायत्री वाणी का उचित उपयोग करना जानती थी। उसे दुःख की घहराती घटा को दूर करने की कला का ज्ञान था। इसीलिए उसकी गृहस्थी की गाड़ी अपने निश्चित मार्ग

पर शान्तिपूर्वक चली जा रही थी, जब लक्ष्मी की गृहस्थी में फूटे बर्तनों के टकराने का भद्दा और अशुभ स्वर था।

इन दोनों चित्रों को देखो और समझो; इनका क्या मतलब है। मैं समझता हूँ कि मैंने उन्हें इतना स्पष्ट कर दिया है कि तुम सरलतापूर्वक समझ सकती हो।

: ४ :

उसके मुँह से फूल झड़ते थे !

चि० कान्ता,

पहले के पत्रों में मैं तुम्हें गृह-जीवन के सम्बन्ध में कई बातें लिख चुका हूँ। आज एक ज़रूरी बात तुम्हें फिर लिख रहा हूँ।

मेरे सामने एक विवाहिता स्त्री का एक करुणाजनक पत्र पड़ा हुआ है। इसमें वही रोना है जो हजारों को रोते हमने जीवन में देखा होगा। उसको सबसे बड़ी शिकायत यह है कि मैंने सब कुछ किया, अपने पति के लिए सब तरह के कष्ट सहती रही पर हमारा गृह-जीवन निराशा और दुःख से भरा हुआ है। किसी की ओर से उसे कोई सुख नहीं; उसकी ओर कहीं से प्रकाश की कोई किरण नहीं आती। सर्वत्र अँधेरा है। वातावरण में जैसे एक बोझ है और सब लोग उस बोझ से दबे हुए हैं। उसे समझ में नहीं आता कि कैसे गृह-जीवन को सुखी बनाने की कल्पना की जा सकती है।

वही रोना

इस स्त्री की अवस्था सचमुच दयनीय है। मैं इसे अच्छी तरह जानता हूँ। बहुत निकट से मैंने इसे देखा है। एक नेक-दिल और शरीफ़ औरत है। उसके दिल में कोई मैल नहीं। रूप-रंग में भी अच्छी है और जब इसका विवाह हुआ था तो स्वास्थ्य भी काफ़ी अच्छा था। मेहनती है। अपव्यय और फैशन की दीमक उसके जीवन में कभी नहीं लगी। गृहस्थी में उसने कष्ट भी सहे हैं।

फिर भी वह दुखी है। उसका स्वास्थ्य गल गया है। उसका चम्पई रंग और कुन्दन-सा दमकता चेहरा स्वप्न हो गये हैं। उसकी चिन्ताएँ एवं शंकाएँ बढ़ गई हैं और जीवन के मार्ग में चलते हुए अकेलेपन का भाव उसके मन में भर गया है।

जब-जब मैं इस स्त्री को देखता हूँ, मेरा मन दया से भर जाता है। उसके मुख पर मानो करुणा की छाप पड़ गई है। प्रकाशहीन आँखों में दुःख की काली छाया सघन हो गई है। मुझे दुःख इसलिए भी होता है कि वह निर्दोष हृदय की स्त्री है और जीवन की कठिनाइयों को झेलने में कभी पीछे न रही।

आश्चर्य यह है कि अपने पति में उसे कोई ऐसी बात दिखाई नहीं देती जो विवाहित जीवन की असफलता या दुःख का कारण हो। वह एक परिश्रमी, ईमानदार और गम्भीर स्वभाव का आदमी है। और कोई ऐसी लत उसे नहीं जिसके कारण स्त्री को निराश या दुःखी होने का कोई कारण हो।

फिर भी पति दुःखी है और स्त्री दुःखी है और इस स्त्री की समझ में यह बात नहीं आती कि यह सब क्यों है, कैसे है?

मैं इस स्त्री के पति से भी मिला हूँ और उसे समझने की कोशिश की है। वह एक समझदार आदमी है। सहिष्णुता में वह अपनी स्त्री से कुछ कम नहीं और उसकी स्त्री आराम से रहे, इसकी यथासम्भव चेष्टा करता है। उड़ाऊ नहीं है और घर-गृहस्थी के कार्यों की तरफ़ ध्यान देता है। अपनी पत्नी के प्रति वफ़ादारी के भाव भी उसमें हैं। तब भी दुःख है, रोना है, खीझ है और जिन्दगी की गाड़ी के पहिये रुक-रुक कर चलते हैं—आवाज़ करते हुए। सब कुछ होकर भी कुछ नहीं है और जीवन में एक अजब सूनापन भर रहा है।

असल बात तो यह है कि विवाहित जीवन में ईमानदारी और वफ़ादारी ही सब कुछ नहीं है। इस ईमानदारी और वफ़ादारी को जीवन में किस प्रकार वर्ता जाय, इसके ज्ञान और तदनुकूल आचरण पर विवाहित जीवन का सुख निर्भर करता है। सुखी दाम्पत्य-जीवन की एक स्वतन्त्र कला है। इसमें पग-पग पर कौशल ('टैक्ट') की, चतुराई की जरूरत है। इसलिए खिलाड़ी और सहनशील दम्पति विवाहित जीवन में भावुक दम्पतियों की अपेक्षा अधिक सुखी देखे जाते हैं।

कौशल की जरूरत

इस नारी में, जिसका उल्लेख मैंने यहाँ किया है, सब गुण है पर एक ऐसा दुर्गुण है जिसने सब गुणों पर पानी फेर दिया है। उसका दोष यह है कि वह हँसना नहीं जानती। उसमें विनोद-वृत्ति का सर्वथा अभाव है। वह हँसमुख नहीं है। अक्सर उसका मुँह लटका रहता है और जब वह सामान्य मनोदशा में होती है तब भी उसके चेहरे को देख कर यह मालूम होता है मानो कोई दुःखद घटना घट गई है। एक ऐसा चन्द्रमुख जिस पर लगे ग्रहण का मोक्ष नहीं है।

मातमी स्वभाव

मैं मानता हूँ कि आज के जमाने में, जब साधारण मनुष्य के चारों ओर दुःख और कठिनाइयों के पहाड़ खड़े हैं और उसके जीवन का संघर्ष बहुत बढ़ गया है, ऐसी स्त्री को लेकर जीवन के कंटकपूर्ण मार्ग पर चलना बहुत मुश्किल है। माना यह स्त्री अकेले गृहस्थी के सब कार्य करती है पर इन कार्यों को करते हुए उसे वह प्रसन्नता नहीं होती जो उसे 'अपना' घर सँभालने में होनी चाहिए; वह उस गुदगुदी भरे हर्ष का अनुभव नहीं करती जिसमें 'अपने' गृह को बनाने का भाव होता

है। वह सुबह से रात तक काम में लगी रहती है पर यह सब काम वह एक मजदूरनी की तरह करती है; गृहस्वामिनी की तरह, गृह-लक्ष्मी की तरह नहीं। प्रत्येक क़ाम को करते हुए उसकी खीझ बढ़ती है—उसकी शिकायतों की तादाद बढ़ती जाती है। वह मन में बड़बड़ाती है। यह खीझ जरासा दबाव पड़ते ही बाहर आ जाती है। और सारे घर के दुःख का कारण बन जाती है। एक बवंडर उठ खड़ा होता है और सब को झकझोर देता है।

कोई नौकर-नौकरानी उसके यहाँ ज्यादा दिन नहीं ठहरती। जब वे साधारण बात पूछते हैं तो वह उनसे लड़ पड़ती है; झनक कर या व्यंग भरे शब्दों में बोलती है। नौकर से कोई ग़लती होती है तो वह एक दृश्य खड़ा कर देती है। बच्चे हँसते-खेलते मन में उमंग लिये माँ से कुछ कहने आते हैं पर उसका मुँह और उसके तेवर देखते ही सहम जाते हैं। वह जरा-सी बात पर बच्चों को पीट देती है। यदि उसके पति उससे कोई बात कहते हैं तो वह ऐसा भाव प्रगट करती है कि मुझे इससे क्या और जब वह किसी प्रश्न पर चुप रह जाते और अकेले ही उसका निबटारा कर लेते हैं तो वह लम्बा श्वास लेती और कहती है—'मैं कौन होती हूँ ?'

सचमुच ऐसी स्त्री को लेकर जिन्दगी के दिन काटना कठिन है। जब-जब मैं इस स्त्री की मनोदशा पर विचार करता हूँ तब-तब मेरे सामने एक दूसरी स्त्री का चित्र आ जाता है। यह स्त्री भी कुछ असाधारण वातावरण में नहीं जन्मी। पहली की भाँति ही वह एक मध्यम श्रेणी के घर में पैदा हुई थी। उसे कुछ अच्छी शिक्षा भी न मिली। विवाहित जीवन में वह पहली-जितनी

एक दूसरी औरत

ईमानदार भी नहीं है; न उतना परिश्रम ही कर सकती है। दुःखी स्त्री की अपेक्षा वह आलसी भी है और उसमें फैशन-प्रियता और चटक-मटक के भाव भी कुछ ज्यादा हैं पर उसका घरवाला उससे खुश है; आस पास के लोग उससे खुश रहते हैं; नौकर-चाकर उसके पास काम करते हुए प्रसन्नता अनुभव करते हैं और दुःख की लम्बी और काली छाया घर से दूर रहती है। जीवन की गाड़ी अपनी स्वाभाविक गति से रास्ता काटती चली जा रही है। उसमें कहीं कोई कर्कश आवाज़ नहीं, कोई रुकावट नहीं।

यह स्त्री दिल की उतनी निर्दोष भी नहीं है। बातूनी भी खूब है, जो प्रत्येक स्त्री के लिए सबसे बड़ा खतरा है, पर वह जब बोलती है, उसके मुँह से फूल झड़ते हैं। हँसना जाननेवाली वह जीवन की सफलता का एक बहुत बड़ा 'गुर' पा गई है। वह पीठ पीछे जिसकी आलोचना करती है उससे भी हँसकर बोलती है। जीवन में हास्यप्रियता और विनोद का मूल्य वह समझती है। वह नौकरों से हँसी-हँसी में उनकी शक्ति और इच्छा से ज्यादा काम करा लेती है। वह बच्चों की गलतियों पर आँखें नहीं तरेरती; मिठास के साथ उनको समझा देती है। वह पति के कार्यों का दूसरे के सामने समर्थन करती है और कोई दुःखद प्रसंग आता है तो हँसकर टाल देती है। काँटा जीवन की धारा में बह जाता है; हृदय में चुभने नहीं पाता।

जब पहली स्त्री दिन भर के बाद काम पर लौटने वाले पति के सामने मुँह लटकाये और घर-गृहस्थी की शिकायतों का रजिस्टर खोले हुए आती है तब दूसरी के हाथों में जलपान की एक तश्तरी और ठंडे पानी का ग्लास होता है और ओठों पर

मुस्कराहट होती है। उसका चेहरा मानो पति के स्वागत में खिला पड़ता है। दो मधुर बोल, ज़रा हँसी और बेचारा पुरुष सन्तोष का श्वास लेता है। कलेजे से दुःख का पहाड़ उतर जाता है; दिन भर के काम की थकावट मानो दूर हो जाती है और दबा-दबा सा हृदय फूल-सा हलका हो जाता है। उसमें शक्ति और तेज की धारा प्रवाहित हो उठती है।

पति की निराशा

यह याद रखने की बात है कि विवाहित स्त्री के सौभाग्य को नष्ट करने वाली सब से प्रधान वस्तु पति की उसकी ओर से निराशा है। दिन भर के जीविका और जीवन-संघर्ष के बाद यदि कोई पति अपनी पत्नी से उस शान्तिकर, तृप्तिकर वाणी और विनोद की आशा करता है जो धूप से झुलस रहे वृक्ष में शीतल जल डालने के समान है, तो कुछ असम्भव माँग नहीं पेश करता। विवाहित जीवन की सफलता के लिए जितने गुणों की आवश्यकता है उनमें मैं प्रफुल्लता को सब से अधिक प्रभावशाली मानता हूँ! इस गुण की आवश्यकता पुरुष के लिए कुछ कम नहीं है पर स्त्री में उसका होना बहुत ज़रूरी है। मैं मानता हूँ कि इसका अभ्यास करना उसके लिए पुरुष की अपेक्षा सरल भी है। क्योंकि पुरुष को जैसी कठोर वास्तविकताओं की दुनियाँ में चलने को विवश होना पड़ता है,वह स्त्री के जीवन में उतनी उग्रता के साथ प्रकट नहीं होती।

यह मुर्दनी का वातावरण।

मैंने अनेक स्त्रियों के जीवन को केवल इस दुर्गुण के कारण नष्ट होते देखा है। कोई दूसरी बात पुरुष को गृह-जीवन से इतना शीघ्र नहीं उबा देती जितनी घर का मुर्दनी से भरा हुआ वातावरण। वह दुनिया के युद्ध से थका और प्यासा घर में इस आशा के साथ आता है कि यहाँ प्रेम, हास्य, अभिन्नता

का जो झरना बह रहा है, उसके शीतल जल में स्नान कर सारी थकावट दूर हो जायगी और उसे पीकर कुछ देर तो तृप्ति का अनुभव होगा, अगली मंजिल तक चलने की ताक़त पाँवों में आयेगी और दिल में कठिनाइयों को झेलने के लिए स्फूर्ति पैदा होगी। जिस समय इस प्रकार की आशाओं से उसका हृदय तरंगित हो, तब पहली स्त्री जो दृश्य उपस्थित करती है, उससे उसकी आशा-लता पर तुषार-पात होता है और वह सोचने लगता है कि यह क्या है और क्यों है? उसकी उमंगें दब जाती है और जीवन में इकलेपन का अनुभव उसमें भर जाता है। वह अपने को संयुक्त जीवन की कड़ियों से अलग पाता है, जहाँ वही है और कोई उसका साथी नहीं।

जब मैं कहता हूँ कि उत्फुल्लता—हँसमुख रहना—स्त्री के लिए सबसे उपयोगी गुण है तब मैं यह केवल पति के लिए अथवा गृह की दृष्टि से ही नहीं कहता वरन् इन सबसे ज्याद स्वयं स्त्री के लिए हितकारी समझकर कहता हूँ। नारी का हृदय पुरुष से अधिक भाव-प्रवण—'सेंसिटिव'—होता है। इसलिए उसके जीवन में बहुत-सी ऐसी बातें आती हैं जो यों बहुत छोटी होती हैं पर उसे बहुत ज्यादा अशान्त और चंचल कर देती हैं। यदि स्त्री इन छोटी-छोटी बातों के लिए रोने लगे या रोने का अभ्यास डाल ले तो उसका जीना दूभर हो जायगा और वह सारे घर में अपनी रोनी सूरत की छाया डाले बिना न रहेगी। वह रोयेगी और रुलायेगी। स्वयं दुखी होगी और दूसरों को दुखी करेगी। प्रायः शुरू में स्त्रियाँ इसे बहुत मामूली बात समझती हैं। और कई तो इसे पति को अपने पक्ष में करने और कुटुम्ब के अन्य सदस्यों के विरुद्ध एक अस्त्र के रूप में भी इस प्रकार रोने और मान का अभ्यास करती हैं। हर हालत में वे एक ऐसी बड़ी

भूल करती हैं जो बाद में बढ़कर असाध्य बीमारी का रूप धारण कर लेती है। रोने का अभ्यास बड़ा बुरा है। यह अफीम-सेवन की भाँति एक घोर बन्धनकारी व्यसन है। एक बार इसके जाल में फँसने पर फिर स्त्री अपने को बेबस पाती है। वह चाहकर भी अपना उद्धार नहीं कर सकती। वह हँसने की कोशिश करती है पर मुँह पर चाँदनी की जगह बादलों की अँधियारी छा जाती है। वह मुस्कुराना चाहती है पर ओठों पर स्याही फिर जाती है। वह खिलखिलाना चाहती है पर मुँह नहीं खुलता।

जो स्त्रियाँ अस्त्र के रूप में इसका प्रयोग करती हैं वे एक खतरनाक अस्त्र के साथ खेलती हैं। उनके लिए यह याद रखना सदा हितकर होगा कि यह अस्त्र अत्यन्त अविश्वसनीय है और जब इससे क्षणिक सफलता मिलती है तब भी अन्त में स्त्री घाटे में रहती है। एक तो ऐसे अस्त्र के सामने, थोड़ी देर के लिए, केवल दब्बू, विलासी एवं कमज़ोर हृदय के पति ही दबते हैं। दूसरी बात यह कि इससे घर में जो अशान्ति पैदा होती है उससे प्रत्येक पति में फिर चाहे वह किसी प्रकार के स्वभाव का क्यों न हो, एक खीझ पैदा हो जाती है और समय के साथ वह खीझ बढ़ती जाती है। यह याद रखो कि जो पति किसी सिद्धान्त और कर्तव्य के लिए नहीं वरन् नारी का मुँह और आँसू देखकर अपने माता-पिता अथवा अन्य प्रियजन को छोड़ सकता है, वह समय आने पर उस स्त्री की उपेक्षा करने में भी न चूकेगा।

इसलिए हर अवस्था में नारी के लिए उचित यह है कि वह सदा हँसमुख रहने का अभ्यास करे। यह कोई कठिन बात नहीं है। मैं अपने अनुभव से कह सकता हूँ कि खुशमिज़ाजी एक सरल गुण है जो ईमानदारी के साथ अभ्यास करने पर सहज

ही प्राप्त किया जा सकता है। जो स्त्री छोटी-छोटी दुःखी करने वाली बातों को हँसकर उड़ा देती है वह मानो

प्रफुल्लता

सदा एक श्रेष्ठ एवं विश्वसनीय अस्त्र का प्रयोग करती है। दो मिनट की सहनशीलता आगे के लिए अमृत हो जाती है और ज़रा-सी ग़लती या असहनशीलता से कभी समाप्त न होने वाले दुःखों का जो सिलसिला चल निकलता, उसका अन्त हो जाता है। पहली स्त्री की भाँति ही बहुत सी स्त्रियाँ इस सरल हँसी का प्रयोग करने की जगह बात का बतंगड़ बना देती हैं और स्वयं दुःखी होती हैं। वे अकारण दुःख मोल लेती फिरती हैं। उनका चेहरा पीला पड़ जाता है; आँखें प्रकाशहीन हो जाती हैं और शरीर शिथिल एवं कान्तिहीन हो जाता है। इन बातों से पति का दिल जीतने की झूठी मृग-तृष्णा में पड़ कर वे सच्चे मार्ग से भटक जाती हैं। इसके कारण पति की विरक्ति बढ़ती जाती है, कोई स्त्री पति की चिन्ताएँ बढ़ाकर यदि उसका प्रेम पाने की कोशिश करती है तो मानो बालू से तेल निकालना चाहती है।

बदमिज़ाज स्त्री का दोष यह है कि वह नहीं जानती कि कौन काम किस तरह और किस समय करना चाहिए। उसे कभी अपना रोना रोने से ही फ़ुर्सत नहीं मिलती।

बच्चों का विनाश

वह जब पति को खिला रही होती है तब ऐसी चिन्ताजनक बातें छेड़ देती है कि भोजन विष हो जाता है। वह बात-बात पर बच्चों को डाँटती, बुरा-भला कहती और उनके साथ-साथ पति की ख़बर लेती है। बच्चे ऐसी स्त्री से सदा शंकित रहते हैं। उन्हें मातृत्व की मधुरता की छाया में पनपने का अवसर नहीं मिलता। फलतः वे उद्दण्ड और सैलानी हो जाते हैं और मौका मिलते ही घर से निकल जाते

हैं। घर में उनके लिए कोई आकर्षण नहीं रह जाता। जब तक बाहर रहते हैं, माँ की डरावनी आँखों और चंचल ज़बान से बचे रहते हैं। इसका उनके चरित्र पर भी बुरा असर पड़ता है और स्त्री मात्र के प्रति एक दुर्भावना और कटुता उनमें पैदा हो जाती है।

जो स्त्री सदा अपनी क़िस्मत का रोना रोती रहती है, जिसे अपने पति की बुरी आलोचना करने, उसको नीचा दिखाने की आदत पड़ गई है वह कभी विवाहित जीवन में सुखी होने की आशा नहीं कर सकती। ऐसी स्त्री सदा सन्देह, शंका और जासूसी अर्थात् अविश्वास की दुनिया में रहती है। यदि उसका पति किसी स्त्री से कुछ बात करता है या किसी स्त्री की ओर देखता है या उससे मिलता है तो उसका हृदय शंका से काँप उठता है। यदि उसका पति किसी स्त्री से हँसकर बात करता है तो उसके कलेजे पर साँप लोट जाते हैं और वह ईर्ष्या से भर जाती है। वह पति को गुलाम बनाकर रखना चाहती है पर उसे कैसे वश में रखा जा सकता है, इसे बिल्कुल नहीं जानती, न जानने के लिए उत्साह या उत्कण्ठा ही प्रकट करती है। वह यह भूल जाती है कि अविश्वास से गुप्त सम्भावनाएँ बढ़ती हैं, जब विश्वास एवं निष्ठा में उनकी बाढ़ रुकी रहती है। इस प्रकार की ईर्ष्यालु और रोनी स्त्री को कोई स्त्री नहीं चाहती और वह जब स्त्रियों में जाती है तो प्रायः स्त्रियाँ उससे जल्द मुक्ति पाने की ईश्वर से प्रार्थना करती हैं। ऐसी स्त्री को कोई हार्दिक सखी नहीं मिलती क्योंकि वह किसीका विश्वास नहीं कर सकती और न उस पर कोई दूसरी स्त्री विश्वास कर सकती है।

इसके विरुद्ध जो स्त्री सदा हँसमुख रहती है उसकी सर्वत्र पूछ होती है। बच्चे उसे चाहते हैं; नौकर उसका मुँह जोहते हैं।

कुटुम्बी और प्रियजन उसे मानते हैं और स्त्रियों के समाज में उसकी उपस्थिति की आवश्यकता सदा महसूस की जाती है। वह दूसरों के दुःख को कम करती है और अपनी दुःख सहने की शक्ति को बढ़ा लेती है। उसका स्वास्थ्य अच्छा रहता है, शरीर में स्फूर्ति बनी रहती है। दुःख और अभाव उसके स्वभाव पर बहुत कम असर डाल सकते हैं। हँसी और प्रफुल्लता के प्रवाह में गृह-जीवन का कूड़ा-कर्कट बह जाता है और दुःखदायी काँटे इस हवा में उड़ जाते हैं। जीवन हल्का-हल्का, हवा भरी गेंद के समान, प्रहार सहकर भी उत्फुल्लता बनाये रखने में समर्थ होता है।

हँसमुख स्त्री

निश्चय ही विवाहित जीवन का आनन्द इस बात पर निर्भर है कि स्त्री के मुँह से फूल झड़ते हैं या आँसू के बादल टकराते हैं। हँसता हुआ चेहरा खिले हुए गुलाब के फूल की तरह आकर्षित करता है। जो स्त्री बोलने में शर्बत घोलती है और अपने पति को देखते ही जिसका चेहरा खिल उठता है उसका विवाहित जीवन बहुधा सफल होगा। ऐसी स्त्री गृह-जीवन का शृंगार है और उसे पाकर पति अपने भाग्य को सराहता और सुख एवं निश्चिन्तता के साथ साँस लेता है।

: ५ :

कौन सुखी है—राजरानी या शान्ता ?

चि० कान्ता,

जीवन में अक्सर यह जानना बड़ा कठिन होता है कि कौन सुखी है, कौन दुखी। इसी सम्बन्ध में आज तुम्हें एक मनोरञ्जक बात सुनाऊँगा।

राजरानी सेठ राजमल की लड़की और रायबहादुर चाँदमल की पुत्रवधू है। बड़े घर की बेटी, बड़े घर की बहू। राजरानी रूपरानी है; गहने-कपड़ों के मानसिक बोझ से दबी हुई। भरा शरीर, चाँद-सा मुखड़ा, सुन्दर और आकर्षक वस्त्रों से सजा, मृदु-मृदु हँसने वाला, हर चीज़ का बाहुल्य, ऐश्वर्य, और वैभव से घिरा और उसी के बोझ से लदा जीवन, दास-दासियाँ, कुछ काम नहीं, अनुरक्त पति। जीवन में सामान्य जन जिन वस्तुओं और सुविधाओं की अभिलाषा रखते हैं, प्रायः सब राजरानी को प्राप्त हैं। धन, रूप, प्रभुत्व, आराम, प्रतिष्ठा। हर एक कहता है—भाग्य से ही ऐसा घर मिलता है। बेटी की किस्मत थी, ऐसा घर मिला। अब राज करे।

दूसरी ओर राजरानी की एक, स्कूल की, प्रिय सखी शान्ता को देखो। बेचारी ने कैसा राजकुमारियों-सा सौन्दर्य पाया था। पिता उसको पुत्रों से भी ज्यादा चाहते थे। धन कुछ वैसा न था पर बेटी को अच्छी शिक्षा देने की उन्होंने सदा कोशिश की। और देख सुनकर कृष्णचन्द्र को व्याह दिया। कृष्णचन्द्र अच्छे विचारों का एक युवक, ग़रीब घर। माता और बहिन। सब अच्छे

स्वभाव के। कृष्णचन्द्र कर्त्तव्यशील युवक, कुछ विचार और सिद्धान्त भी हैं उसके अपने। सीधी-सादी ईमानदारी की ज़िन्दगी बिताने की कोशिश करता है। एक समाचारपत्र के कार्यालय में है। साठ रुपये मिलते हैं। घर में नौकर-चाकर की गुञ्जाइश नहीं। शान्ता को ही अधिकांश काम करने पड़ते हैं। सब कहते हैं—बेचारी की ज़िन्दगी ऐसी ही गई; न बाप के यहाँ आराम से बैठ सकी, न ससुराल में ही उसे चैन है। सदा उसे भाग-दौड़ करते ही बीता। कभी दो क्षण शान्ति से न बैठ सकी। बाप की अक्ल मारी गई थी, नहीं तो राय विन्दाप्रसाद ने तो इशारे-इशारे में अपने लड़के के लिए बात भी चलाई थी पर जो क़िस्मत में ही नहीं था, वह कहाँ से मिलता?

राजरानी सेठानी है;—'मालकिन बहू' है। सुबह आठ बजे हज़ार रुपये के बढ़िया महोगनी के, चाँदी के ठोस डण्डों वाली मच्छरदानी से भूषित, पलँग से करवटें बदलने और जँभाइयाँ लेने के बाद उठती है। फिर चाय पीकर कुछ देर आरामकुर्सी पर लेटती है और कोई अख़बार उलटती है पर ज़्यादातर रात का बचा कोई उपन्यास पढ़ने में लग जाती है। फिर घण्टे भर बाद एक-दो अँगड़ाई, एकाध जँभाई लेकर शौचादि से निवृत्त होने जाती है। फिर कुछ देर दास-दासियों को 'यह करो, वह करो, यह हुआ, वह हुआ,' मतलब आज्ञाओं और प्रश्नों से ज़रा सजग कर, अवसर अनुकूल हुआ तो ज़रा गप-शप लगा ग्यारह बजे नहाने जाती है। बारह बजे तक नहा-धोकर, साज-शृङ्गार करके चौके में पहुँचती है क्योंकि पति देवता के कोठी से लौटकर आने का समय हो रहा होता है। देख-रेख करने के बाद या किसी ख़ास चीज की तैयारी की आज्ञा देने के बाद अपने कमरे में चली जाती है। पति देव आते हैं, कपड़े उतारते हैं; ठण्ढ

के दिन हुए तो सुक्खू कहार से मालिश होती है, गर्मी के दिन हुए तो चमेली के तेल की मालिश सिर्फ सिर तक ही सीमित रहती है। इसके बाद स्नान होता है। फिर आध घण्टे गृह-देवता की पूजा चलती है। इसके बाद 'छोटे मालिक' भोजन पर बैठते हैं। 'बड़े मालिक' अकसर काशी में रहते हैं; धर्म बटोर रहे हैं। जब यहाँ रहते हैं तब भी व्यापार का काम ही देखते हैं। उनकी स्त्री बहुत दिन पहले मर चुकी थी। राजरानी के पति भी पहले राजरानी के प्रथम संस्करण को खत्म कर चुके हैं। राजरानी (दूसरी) आवृत्ति हैं।

करीब-करीब राजरानी को आराम ही आराम है। काम वैसा कुछ नहीं है। रूप है, धन है, नौकर हैं, चाकर हैं, मोटर है, सिनेमा है, ग़प-शप है, किताबें हैं, कुछ न कुछ होता ही रहता है। पति के साथ कभी सिनेमा चली जाती है, कभी मोटर लेकर सैर को या सखी-सहेलियों से मिलने निकल जाती है। कभी चार औरतें मेल-मुलाकात की जुटीं तो ताश का खेल छिड़ जाता है। पर वैसे लम्बे दिन ज्यादातर सूने-सूने से लगते हैं। कैसे बीतें ये दिन! कभी सो जाती है, कभी टेलीफोन के डायल से खेलती है—हलो मंजु...कोई उत्तर नहीं। फिर हलो कान्ता... बहिन जी, कान्ता अपनी जीजी राधा के साथ कहीं गई है। तब रेडियो का स्विच दब जाता है और पलँग पर पड़ जाती है। और वह गायक यन्त्र, एक उदासी-भरे, भारग्रस्त स्वर में गाता है, बोलता है, उपदेश और व्याख्यान देता है। हृदय से निकला स्वर नहीं, यन्त्र से अनुशासित स्वर!

हाँ, वह बड़े आराम से है, राज करती है, किसके ऐसे भाग्य होंगे!

शुरू-शुरू में राजरानी भी शायद कुछ ऐसा ही सोचती थी।

ऊपर से कुछ कहती हो पर अन्दर से अपने वैभव से पुलकित थी। हुकूमत की दुनिया पाकर उसका अहंकार तृप्त था। पर कब तक वह अपने को भुलाये रख सकती थी ? और भुलाने की सामग्री भी उसके पास क्या थी ? उसका मन इधर-उधर झाँकता था; उसका नारीत्व प्यासा-प्यासा अपने अन्दर घुटता, छटपटाता और कभी बिना समझे कि वह क्या चाहता है, एक गहरी साँस लेता था।

वह बड़े आराम से है ! पर यह आराम ही उसके लिए भयंकर हो उठा है। यह सारा ऐश्वर्य मानो एक व्यंग-सा उसके जीवन से टकराता है।

लम्बे दिन, इस आराम की ज़िन्दगी में मानो और लम्बे होते जाते हैं और रातें ऐसी जिनके आने न आने का कोई महत्त्व नहीं। जब उसे नींद की ज़रूरत होती है, नींद नहीं आती; जब उसे जागने की ज़रूरत होती है वह सोती रहती है !

उसके कण्ठ से, अन्दर ही अन्दर प्रतिध्वनित होने वाले शब्द बार-बार निकलते हैं—'बड़े आराम से हूँ। काश मैं आराम से न होती, मेरे आगे भी कुछ काम होता।' वह जानती है; निष्क्रियता से उसका जीवन अवसन्न होता जाता है। एक शिथिल, प्रयासहीन जीवन—मानो चेतना इतनी ही है कि चेतना का ज्ञान है। बाक़ी सब कुछ धूमिल, जीवनहीन, मेरुदण्ड जिसका टूट गया है ऐसी निश्चेष्ट, धारा में बहने वाली ज़िन्दगी ! कोई अवरोध नहीं, कोई संघर्ष नहीं, सब कुछ यन्त्र की तरह चलता हुआ, बेस्वाद, फीका !

तब राजरानी चिन्ताग्रस्त रहने लगती है। नींद आती है; नहीं भी आती है। नींद पर उसका कुछ वश नहीं, मन पर तो जैसे बिल्कुल नहीं। तब मधुर-मधुर बोलने वाली राजरानी

खीझती है। चिड़चिड़ी हो रही है। अब इससे उलझी, उससे टकराई।

और इस मनःस्थिति में, चोरी-चोरी, शैतान उसके मन में घुस रहा है। कभी-कभी राजरानी चौंकती है, वह अपने को देखकर काँप उठती है। मुश्किल यह है कि भूलने और इस आराम की ज़िन्दगी से पलायन करने की सामग्री भी उसके पास नहीं है। उसके पास समय ही समय है, और काम कुछ नहीं। किसमें वह अपने को उलझाये कि सूने दिन, और उससे अधिक सूनी रातें, कृतार्थ हो जायें। फल यह है कि चूँकि दूसरों के सामने वह कम होती है, एकान्त में उसे अपना सामना करना पड़ता है। और कदाचित् यह अपना सामना करना, राजरानी-जैसों के लिए सब से भयंकर है। इस दर्पण में मुँह ही दिखता तो कोई बात न थी, पर अन्तःकरण भी नंगा-नंगा सा दिख जाता है!

और अब राजरानी सोचती है—'आराम का यह जीवन! हाय, कैसा है आराम का यह जीवन!'—और द्रौपदी के चीर-सा उसका दुःख और उसकी चिन्ता—उसकी उलझन बढ़ती ही जा रही है।

× × ×

शान्ता सुबह ४-५ बजे उठ जाती है। भगवान् का स्मरण करती है और पति, सास और ननद इत्यादि कुटुम्बियों के मंगल की कामना। इसके बाद शौचादि से निवृत्त हो घर की सफ़ाई कर डालती है। तब स्नान करती है। फिर थोड़ी देर उपासना। इसके बाद सिगड़ी सुलगा कर सुबह का नाश्ता तैयार करती है। जबतक घर उठता है, बहुत-सा कार्य समाप्त हो चुका रहता है।

जिससे उठने पर मिली, दो प्यारी-प्यारी दिल खुश करने वाली बातें कीं, हँसते-मुस्कराते हर एक का स्वागत किया। जैसे प्रभात होते ही संसार प्रकाशित हो उठता है वैसे ही शान्ता के उठने से सारा घर हँसने लगता है। नाश्ता तैयार होने पर सब को बैठाकर वह जलपान कराती है। इसके बाद पति के पास बैठकर ताज़ा अख़बार देखती तथा कुछ अध्ययन करती है। कभी बात-चीत करती है। अपनी कठिनाइयाँ, समस्याएँ, दुःख-दर्द सभी के सम्बन्ध में समय-समय पर बात होती है। पर इनमें कभी खीझ नहीं आती। सहानुभूति और ममत्व के भाव से सब तर होता है। ठीक आठ बजे रसोईघर में चली जाती है और नौ बजे तक भोजन तैयार हो जाता है। यही भोजन बनाने में दूसरी स्त्री को दो घण्टे लगते पर वह कुछ ऐसे ब्योंत से काम करती है कि घण्टे का काम आध घण्टे में होता है। पति को और ननद को हँस-हँस कर भोजन कराया। ननद को स्कूल भेजा और पान-एलायची देकर पति को आफिस के लिए विदा किया। फिर कपड़े धोने बैठ गई। कपड़े धोकर धूप में सूखने को डाल दिये और फिर सास इत्यादि को भोजन कराया। तब खुद खाने बैठी। इसके बाद कुछ देर आराम किया। फिर सास के पास बैठकर सीना-पिरोना, कपड़े-लत्ते का काम करती रही। कभी कोई सखी-सहेली आ गई तो उससे बातचीत चली, कभी सखी-सहेलियों के घर भी गई। फिर चार बजे सिगड़ी सुलगा कर जलपान तैयार किया। पति और ननद को आते ही जलपान कराया। दो मीठी बातें कीं। कपड़े तहाकर रखे। खाना बनाया, खिलाया और फिर थोड़ी दूर पति के साथ टहलने चली गई। ननद माधुरी भी अक्सर साथ रहती है। आठ बजे तक लौट कर कुछ बातचीत, चर्चा। फिर बिस्तर-बिछौने ठीक

किये और नौ बजे भगवान् की प्रार्थना करके और उसका धन्यवाद करके सो गई।

मतलब सुबह से शाम तक काम ही काम है। पर शान्ता है कि उसे कुछ मालूम नहीं पड़ता। उसे इस काम में ही आराम है। कभी किसी दिन उसके मन में लालसा नहीं पैदा हुई—यह लालसा कि मैं राजरानी होती। जो कुछ उसे मिला है उसमें वह तृप्त है! वस्तुतः तृप्ति तो उसी के अन्दर है; इसके लिए वह परिस्थिति पर निर्भर नहीं है। उसके पास इतना समय भी नहीं कि तीव्र और पीड़क लालसाएँ या आकांक्षाएँ उसके हृदय को विकम्पित करें। पति के निकट वह आत्मविश्वास से भरी है। जीवन का सर्वोत्कृष्ट आश्वासन उसे सहज लभ्य है। उसकी यहाँ जो कुछ भी है उसका है; उसका घर है, उसके पति कान्ता (ननद) है, उसकी माँ हैं। इस अपनेपन में लिपटी हुई हैं, उसकी तृप्ति मानो उसे चारों ओर से आवेष्ठित किये हुए है। कहीं दंश नहीं है; कहीं हाहाकार नहीं है; जो कुछ है वह मानो सहज है; मानो उसी का है, और जन्म-जन्मान्तर से उसके साथ है। कहीं कोई खीझ नहीं, कोई अनुताप नहीं।

हाँ, शान्ता कभी चैन से न बैठी। न माता पिता के घर, न ससुराल में।

लोग कहते हैं—बेचारी और अभागिनी शान्ता! एक राजरानी को देखो, एक शान्ता को देखो!

मैं देखता हूँ। मुझे कहीं अभागिनी शान्ता नहीं दिखाई देता। मैं उसमें गृहलक्ष्मी के दर्शन करता हूँ। सुखी, तृप्त, उदार, महामना नारी।

और राजरानी को भी देखता हूँ तो रोना आता है! शिथिल, अपहृता, हाहाकार और द्वन्द्व, अभाव और प्रतिक्रिया,

खीझ और वञ्चना से भरी, सब कुछ है परन्तु उसके बीच प्यास से तड़पती नारी !

आज के सामाजिक जीवन में इस प्रकार के दृश्य मैंने बार-बार देखे हैं। और कौन नहीं देखता। बात कोई मुश्किल नहीं। जो औरत काम में लगी है वह उस औरत से जिसके पास आराम ही आराम है, कुछ काम नहीं, हज़ार दर्जे अच्छी है। उसके पास रोने के लिए समय नहीं है; उसका जीवन वञ्चित और अभिशप्त नहीं है। बेकारी और आलस्य से बढ़कर जीवन का कोई शत्रु नहीं। ये वे काँटे हैं जो अनजाने हृदय को छेद डालते हैं और उसका सञ्चित मधु टपककर समाप्त हो जाता है। जब काम नहीं होता, शैतान हमारे मनोरञ्जन के लिए हमारा साथी बन जाता है। जब काम होता है और उस काम में अपनापन का बन्धन होता है तब जीवन में तृप्ति और सुख का संयोग अधिक होता है। इसीलिए कामकाजी स्त्रियाँ निठल्ली और कोरी बातूनी औरतों से अधिक सुखी देखी जाती हैं और समाज तथा गृहस्थ-जीवन दोनों के लिए प्रायः श्रेयस्कर सिद्ध होती हैं। इससे एक तो उनका स्वास्थ्य ठीक रहता है; दूसरे बेकारी के समय जो व्यर्थ की और प्रायः अकल्याणकर और अवाञ्छनीय चर्चाएँ होती हैं; जिसमें प्रायः दूसरों के प्रति तीव्र और अशुभ भावनाओं की प्रधानता होती है, उनसे रक्षा हो जाती है अतः मन भी अपेक्षाकृत अधिक शुद्ध और स्वस्थ रहता है। मतलब काम-काजी स्त्री सब प्रकार से लाभ में रहती है, और, प्रकारान्तर से, दूसरों का भी कल्याण-साधन करती है। इसीलिए वह सन्तुष्ट, सुखी, स्वस्थ, परिवार और प्रियजनों की प्यारी होती है; जब

निठल्ली स्त्रियाँ अपने और दूसरों के लिए ख़तरनाक होती हैं। बेकारी से बढ़कर अभिशाप जीवन में दूसरा नहीं है। यह मन को मूर्छित और अन्तःकरण की समस्त शुभ वृत्तियों को अचेत कर देती है। यह बुराइयों की खान है; पाप की जननी है। काम में लगा हुआ आदमी, अनायास अनेक पापों और कठिनाइयों से बच जाता है।

अब तुम देखो : सुखी कौन है—राजरानी या शान्ता ?

: ६ :

पति के हृदय की रानी

चि० कान्ता,

दुनिया में हर साल लाखों विवाह होते हैं। इनमें पश्चिम के देशों में होने वाले व्याह अक्सर प्रेम-विवाह होते हैं—दो प्राणी एक दूसरे को देख-सुनकर, मित्रता की परणति होने पर प्रणय-बन्धन में बँधते हैं। पूर्व के देशों में अनेक विचित्र रीतियों के बीच विवाह के उत्सव किये जाते हैं। लेकिन सर्वत्र कुछ न कुछ उत्सव मनाया ही जाता है। सगे-सम्बन्धियों के उल्लास, गुरुजनों के आशीर्वाद, सखी-सहेलियों के विनोद तथा धर्माचार के आश्वासन के बीच दो धड़कते हुए हृदय सामान्य जीवन के एक बन्धन में बँधते हैं। हाँ, दो धड़कते हृदय—आशाओं से भरे, उत्सुक, भविष्य के प्रति किञ्चित सहमे हुए, अनिश्चित जीवन की जिम्मेदारियों को उठाने की उत्कण्ठित, स्वप्न से जिनकी आँखें मुँद रही हैं फिर भी एक नवीन मार्ग पर जिन्हें चलना है, दाँव फेंक चुके जुआरी की आशा-निराशा और द्वन्द्व की मानसिक स्थिति से पूर्ण। क्या होगा, क्या न होगा!

विवाह का जुआ

अच्छे दैनिक पत्रों के कालम प्रायः विवाह-विज्ञापनों से भरे होते हैं और प्रत्येक नगर और ग्राम हर साल मंगल-वाद्यों से गूँजता है। हाँ, हर साल लाखों विवाह होते हैं पर इनमें इक्के-दुक्के ही सफल हो पाते हैं—ऐसे जिन पर भविष्य आनन्द की

मुहर लगा देता है और जीवन की कठोर यात्रा जिनके चुनाव का समर्थन करती है।

टूटा हुआ सपना

नहीं तो अक्सर होता यह है कि ज़िन्दगी के दो झटकों में दिल की खुमारी और आँखों के सपने हवा हो जाते हैं। फिर जीवन की मंज़िल कठिनाइयों से भर जाती है—पग-पग पर समस्याओं और जटिलताओं से भरी हुई। कल जिस नारी की वाणी में कोयल की कूक सुनाई पड़ती थी आज उसमें कौवा काँव-काँव करता सुनाई पड़ता है; जो पत्नी हृदय की आशा और आँखों की ज्योति थी, वह निराशा की कठोर मंज़िल की तरह असह्य हो जाती है। जो पति ज़िन्दगी का नशा बनकर आया था वह खुमारी के बाद की थकान और शिथिलता के रूप में आता है और जिसे देखकर पत्नी की आँखें ठण्डी और तृप्त हो जाती थीं वह अब धूप से जलते हुए लम्बे चटियल मैदान की तरह भयानक लगता है। एकाएक जो नारी हँसती हुई चाँदनी के मादक वातावरण में तैर रही थी, वह पाती है कि उसके हाथ-पाँव शिथिल हो गये हैं और उसके नीचे केवल जलती रेत है और किनारा दूर है। तब सारा जीवन धुएँ से भर जाता है। यह ऐसी स्थिति है जिससे पलायन सम्भव नहीं है। सामाजिक समता, स्वतन्त्रता और तलाक़ की सुविधाएँ भी इस धुएँ को हटा नहीं सकतीं। नारी और पुरुष जहाँ भी जाते हैं जीवन की पहली और गहरी छाप साथ लाते हैं और फिर वह खिल-खिल हँसी, जिसमें कहीं अवरोध नहीं है और रोड़ों और कण्टकों को अपने अन्दर निमग्न करती जीवन को ओतप्रोत करके बहती है केवल एक सपना रह जाती है; सपना,—एक टूटा हुआ सपना जो लाख हाथ-पैर मारो, फ़िर न आयेगा।

और स्त्री-पुरुष की इस अतृप्ति के बीच अपनी विचित्र स्थिति

और बनावट के कारण स्त्री ज्यादा घाटे का सौदा कर लेती है।

घाटा भी, लाभ भी!

स्त्री का स्वभाव है कि जिस किसी चीज की तरफ़ झुकती है, एक तूफानी वेग से झुकती है; वैसे साधारण जीवन में आगा-पीछा सोचने की प्रवृत्ति उसमें पुरुष से कहीं अधिक है पर कुछ बातें ऐसी हैं जिनमें वह असमर्थ और लाचार है। चाहे किसी विचार और वर्ग की नारी हो, जीवन में कहीं न कहीं जाकर उसे पुरुष का आश्रय लेना ही पड़ेगा—कहीं न कहीं आत्मार्पण उसके जीवन में आयेगा; और जब तक यह नहीं आता, वह अपने प्रति केवल एक वञ्चना का जीवन व्यतीत कर सकती है। जब बात ऐसी है, तब संयुक्त जीवन के सौदे में, स्थिति के अनुसार औरत अधिक लाभ में भी रहती है और अधिक घाटे में भी। अगर दोनों में प्रेम हुआ, सम्बन्ध अच्छे और ईमानदारी के हुए, दोनों दोनों के प्रति वफ़ादार, कर्तव्यशील और जागरूक हुए, तो समझ लो कि नारी को वह तृप्ति मिलेगी ज़िसके आगे सब कुछ तुच्छ है और जिसे पाकर मानों वह सब कुछ पा गई। ऐसी नारी न केवल स्वयं अपने में सन्तुष्ट होती बल्कि वह गृह का भूषण होती है और समाज के जिस क्षेत्र में प्रवेश करती है अपनी अन्तःतृप्ति, आनन्द और प्रकाश को साथ ले जाती है; निकट के वातावरण को आशा, प्रकाश, ममता और मातृत्व की उदारता से भर देती है। वह घर को उठाती, समाज को उठाती और समाज के बच्चों को उठाती चलती है। यह नारी का गौरव है। प्रेम, सेवा और त्याग से गृह और समाज को शक्तिमान एवं पुष्ट करने का गौरव। जब वह पति के हृदय की रानी बनती है तभी समाज की उदार, महिमा-महिम माता बनने का गौरव भी पा जाती है।

और यदि दिलों में खिंचावट आई, अन्तर पड़ा, खाई गहरी हुई, जीवन में संशय, हृदय में उलझन और दिमाग में खीझ और अतृप्ति आई तो नारी का जीवन न केवल दुखी बल्कि अशक्त और अपदार्थ भी होता जाता है; गृह, सन्तति और समाज के शासन और नियम की शक्ति वह खो बैठती है। भले वह ऊपर से हँसे, उत्सवों में शामिल हो, शृंगार करती और अपने सुख की घोषणा करती फिरे पर वह अन्दर से खोखली, बिल्कुल खोखली हो जाती है—उस सूखी लकड़ी के समान जिसकी आकृति ऊपर से ज्यों की त्यों क़ायम हो पर जिसका गूदा सबका सब, घुन के पेट में चला गया हो और कोई नहीं जानता कि कब वह कड़कड़ करके टूट जायगी और अभिनय समाप्त हो जायगा। ऐसी नारी अपने लिए और समाज के लिए एक भयानक ख़तरा है। अपनी हँसी में भयंकर विष छिपाये हुए, असन्तोष के दाने बखेरती हुई, अपने पदचाप से दिशाओं को कम्पित करती हुई नारी! नारी—जो आस-पास के वातावरण के अमृत-बिन्दुओं को सुखाकर उनकी जगह ज़हर उगलती चलती है: नारी जिसकी आँखों में सूनेपन की आग है, जिसके दिल में अभाव का हाहाकार है, जिसकी लटों में काल-सर्पों का फूत्कार है: नारी, जिसका अन्तःस्रोत सूख गया है, वह अन्तःस्रोत जिसके कारण उसकी महत्ता और मृदुता है।

यह भयङ्कर निराशा

तब सब दृष्टियों से उचित और आवश्यक है कि नारी को गृह में उसका उचित स्थान प्राप्त हो। लाखों औरतों की माँगों में हरसाल सिन्दूर पड़ता है पर अधिकांश की लाली बालों के बीच ही रह जाती है, हृदय तक उसकी चमक नहीं पहुँचती। सवाल यह है और एक बड़ा ज़रूरी सवाल है कि कैसे ये, या इन में से

अधिकांश नारियाँ, पति के हृदय की रानी बन सकती हैं। कैसे वे पतियों, बेनकेल निरंकुश पतियों, पर काबू पा सकती हैं। यद्यपि यह दावा नहीं किया जा सकता कि कुछ ख़ास नियमों का पालन करने से सब स्त्रियाँ पति के हृदय को वश में कर सकती हैं, पर यह अवश्य कहा जा सकता है कि कुछ जरूरी बातों पर ध्यान देने से अधिकांश को पति-हृदय की रानी बनने में कोई कठिनाई न होगी।

पहिली बात यह है कि पत्नी को सदा ख़्याल रखना चाहिए कि जिस आदमी से साथ वह सारी ज़िन्दगी के लिए बन्धन में, आश्वासन में, बँधी है उसकी चिन्ताओं का बोझ कम हो, उसकी चिन्ताएँ कम हों; उसे शान्ति मिले, तृप्ति हो। पति को यह अनुभव हो कि उसकी पत्नी उसी की है; उसमें तन्मय है; उसके सुख से सुखी और दुःख से दुखी। पत्नी को सदा हँसते हुए पति का स्वागत करना चाहिए। याद रखो स्वच्छ निर्मल हँसी से बढ़ कर थकावट—चाहे मानसिक हो या शारीरिक—दूर करनेवाली और शिथिल मानस को स्फूर्ति देनेवाली दूसरी चीज़ नहीं है। यदि तुम चतुर स्त्री हो तो कभी पति को मुँह लटकाने का मौक़ा न दो, उसे प्रसन्न और प्रफुल्ल रखो। और ऐसा तुम स्वयं हँसमुख रह कर आसानी से कर सकती हो। इस हँसमुख स्वभाव ने हजारों घरों को श्मशान होने से बचा लिया है। जिस वक्त पति चिन्तित हो, तुम प्रेम से, उमँगते हृदय से उसके पास जाओ। उसे अनुभव हो कि मुझे जितनी चिन्ता है, मेरी पत्नी को मुझे चिन्तित देख कर मुझसे अधिक है। पति का हाथ हाथ में लेकर उसे प्रेम का, सहानुभूति का आश्वासन दो। कहो कि "मैं ऐसी न हुई कि आपके बोझ उठा लेती, आपको निश्चिन्त कर देती पर

सहानुभूति का आश्वासन

जैसी हूँ, तुम्हारी हूँ, क्या तुम मुझे न बताओगे ? क्यों दुखी हो ? देखो, तुम्हारे चेहरे पर ज़रा भी उदासी आती है तो मेरा कलेजा फटने लगता है। उठो, दिल छोटा न करो। कुछ यों ही तुम पर क्या कम चिन्ताएँ हैं, क्या कम बोझ हैं ? अगर तुम्हीं इस तरह निराश हो जाओगे तो हम लोगों का क्या हाल होगा। दस का बोझ तुम पर है।" इसके बाद चिन्ता के कारण का पता लगने पर यथोचित इलाज करो। जैसे पैसे या खर्च की तंगी के कारण चिन्ता है तो कहो—"मैं तो खुद देख रही हूँ, इतना खर्च कैसे निभेगा। सोचती हूँ, महराजिन को अलग कर दूँ, नौकर की जगह दो-तीन रुपये महीने पर चौका-बर्तन के लिए एक महरिन रख लूँ। यही न, थोड़ा काम मुझे बढ़ जायगा पर ऐसे समय मैं तुम्हारे काम न आई तो कब आऊँगी।··· बीबी (ननद) के ब्याह के लिए भी मैंने सोचा है। अगर तुम बुरा न मानो तो कहूँ ! एकाध जरूरी गहने रखकर बाकी उसे चढ़ा दूँ। मेरा क्या, तुम रहोगे तो बहुत गहने आयँगे-जायँगे।" अगर बड़े साहब या मालिक से झगड़ा हुआ है तो ऐसी बातें करो कि अपमान या लाचारी की जो गाँस दिल में फँसी अभी तक चुभ रही है वह निकल जाये। जैसे—"वह ऐसी बातें क्यों करता है ? पिल कर तो तुम काम करते हो, तब भी ऐसी बातें होती हैं ? दुनिया मानो ईमानदार आदमियों के लिए है ही नहीं। देखो, गीता के चाचा जी को ! काम-वाम तो जो करते हैं मालूम ही है पर ऊपर से सेठ के हितैषी बने हुए हैं। हर साल तरक्की होती जाती है। खैर; अपना भाग्य ही कुछ ऐसा है, क्या करोगे ? भगवान् की आस रखो, एक न एक दिन सुनेंगे।···नहीं, हो सके तो सेठ रामलाल का काम क्यों नहीं कर लेते ? दो बार तो कहला चुका है।" मतलब, इसी तरह

की बातें जिससे पुरुष समझे कि पत्नी उसकी चिन्ता में शरीक है।

बात यह है कि पुरुष केवल यही नहीं चाहता कि उसकी घरवाली उसे प्यार करे—इससे ज्यादा वह यह चाहता है कि वह अपने कार्यों और शब्दों में मेरे प्रति बार-बार उस प्रेम के आश्वासन को दोहराती रहे। स्वभावतः आदमी चुप्पी औरत पसन्द नहीं करता, फिर चाहे वह स्वभाव की कितनी ही भली क्यों न हो। क्योंकि जीवन के संघर्ष में नीरवता का, चुप्पेपन का बोझ सँभालना सब के बूते का काम नहीं। पुरुष खुशमिज़ाज, नेक और ज़रा बातूनी औरत चाहता है। वह चाहता है, स्त्री बातें करें, उसकी बातें करे, उससे बातें करे क्योंकि इससे उसके गर्व को सन्तोष प्राप्त होता है और वह सोचता है, मेरी घरवाली मेरी है, मुझ पर ध्यान देती हैं, मुझमें रस लेती है। अगर तुम आँखें खोलकर अपने इर्द-गिर्द देखोगी तो तुम्हारी सखी-सहेलियों में ऐसे बहुतेरे उदाहरण तुमको मिल जायँगे कि जो ज़रा विनोदी और वाचाल होती है, पुरुष उसकी ओर खूब झुकते हैं। क्योंकि ऐसी स्त्री में पुरुष को एक मित्र, एक सखा, एक प्यारे साथी का आनन्द प्राप्त होता है!

पुरुष-हृदय का रहस्य

पुरुष का स्वभाव है कि वह स्त्री से केवल पत्नी का ही काम लेना नहीं चाहता। वह चाहता है कि उसकी पत्नी दुःख और कष्ट में माता की भाँति उसे आश्रय और सान्त्वना दे, बेटी की भाँति सम्मान और श्रद्धा करे और जीवन-सखी की भाँति उसे सेवा और प्रेम का दान दे। जो स्त्री इस बात को समझती है, वह मानों आधा मैदान मार लेती है।

अनेकरूपा नारी

इसके बाद दूसरी बात यह है कि स्त्री अपना स्वास्थ्य ठीक रखे। स्वास्थ्य में सौन्दर्य का भाव अपने-आप आ जाता है। जो स्त्री अपने स्वास्थ्य-सौन्दर्य की रक्षा नहीं करती वह मानो प्रति दिन अपने सोहाग में आग लगाती है। स्त्री चाहे गुणवती हो पर यदि वह अपने यौवन को, अपने स्वास्थ्य-सौन्दर्य को अधिक से अधिक दिनों तक बनाये नहीं रख सकती तो मानो दाम्पत्य जीवन की सफलता के एक बहुत बड़े रहस्य से अनभिज्ञ है। हर एक स्त्री रति नहीं होती पर हर स्त्री, जो कुछ उसे मिला है उसकी रक्षा कर सकती, बल्कि एक सीमा तक उसे बढ़ा सकती है। अपने आकर्षण को क़ायम रखना हर समझदार स्त्री का त ᐟव्य है। स्त्री को जानना चाहिए कि कब किस तरह की साड़ी पहनना उसके लिए अच्छा होगा, किस वेश-भूषा में वह ज्यादा फबेगी ! स्वास्थ्य-सौन्दर्य और आकर्षण की रक्षा के लिए एक ओर चित्रकार की भाँति, वेश-भूषा में उपयुक्त रंगों के मिश्रण का ज्ञान होना चाहिए, दूसरी ओर शारीरिक भोग-विलास पर संयम भी रखना चाहिए। पुरुष को अपनी चंचलता से एकदम कामुक भेड़िये का रूप देने वाली स्त्री खुद अपने पाँव में कुल्हाड़ी मारती है। वह पुरुष की मीठी, लुभावनी, क्षणिक आवेश की बातों में अवश हो जाती है और अपने को उसकी इच्छा पर छोड़ देती है। कुछ दिनों में एक ओर पुरुष का औचित्य की सीमा से बढ़ा हुआ आवेश कम हो जाता है, दूसरी ओर स्त्री अपने यौवन के आकर्षण और अपने स्वास्थ्य और सौन्दर्य के सञ्चित कोष को रिक्त पाती है। इस रिक्ता नारी के प्रति दया और करुणा चाहे जितनी प्रदर्शित की जाय, यह सच है कि अब फिर वह अपना पूर्व स्थान प्राप्त न कर सकेगी। इस-

स्वास्थ्य-सौन्दर्य और सुरुचि

लिए जहाँ नारी के जीवन में उसका गुणवती, मधुरभाषिणी और हँसमुख होना काम आता है तहाँ उसका स्वास्थ्य और सौन्दर्य भी दाम्पत्य जीवन की मादकता को बढ़ाता है।

रुग्णा बनाम स्वस्थ स्त्री

फिर स्वास्थ्य का एक दूसरा पहलू भी तो है। जो नारी स्वस्थ है वह मानो पति के व्यवसाय को चमकाने वाली पूँजी है, क्योंकि ऐसी स्वस्थ नारी अपनी ओर से पति को बहुत कुछ निश्चिन्त कर सकती है। वह घर के काम-काज में मन लगा सकती है, घूम-फिर कर, पढ़-लिखकर, सखी-सहेलियों से मिल-कर पति के जीवन को हज़ार तरह से मधुर और अधिक सहने योग्य बना सकती है। रोगिणी स्त्री दाम्पत्य-जीवन का अभिशाप है। जब रोग घर में आता है, जब स्वास्थ्य जवाब दे देता है तब मानो असमय ही सूर्यास्त हो जाता है; या सुखी, शीतल जीवन का चन्द्रमा राहु से निगल लिया जाता है। मैं अक्सर देखता हूँ कि स्त्रियाँ पहले इस बात की परवा नहीं करतीं और जब पति की, घर के अन्य लोगों की उपेक्षा मिलने लगती है तब सिर्फ करम फूटने का रोना रोती और बेमतलब बातें करती हैं। अभी-अभी एक लड़की का चित्र मेरी आँखों के सामने है। व्याह के पहले इसने अपनी मूर्खता और अहङ्कार में अपने स्वास्थ्य को ख़राब कर लिया। ज़रा सी बात होती तो यह दो-दो दिन खाना न खाती, दवा दी जाती तो चुपके से फेंक देती, या उलटे लड़ बैठती। कोई समझाता तो तिनक उठती। आज उसके पत्रों की प्रत्येक लाइन निराशा और आँसू से गुँथी होती है। वह चारों ओर से उपेक्षित होकर रोती है और खीझ के कारण अंट-शंट बकने, दूसरों को दोष देने का उसका स्वभाव दिन-दिन गहरा और घना होता जाता है। कभी वह पिता की

दोष देती है। कभी अपनी स्वर्गीया माता को अपने पैदा करने के लिए कोसती है। कभी पति और बहिनों से लड़ती है।

ऐसी मूर्ख लड़कियों की समाज में कमी नहीं है। कोई इन्हें रास्ता नहीं बता सकता और वे लाख सिर पटकें इनकी क़िस्मत में सुख महीं, प्रकाश नहीं। जान-बूझकर दुःख, रोदन, अन्धकार और धुएँ से इन्होंने अपना जीवन भर रखा है। यह लड़की अजीब है। जब लोगों ने इसे सुखी करना चाहा, यह जान-बूझ कर दुःखी रही। जब लोगों ने इसे अच्छा रास्ता बताया इसने घमंड और प्रमाद में टेढ़ा मार्ग चुना; जब लोग इसे हँसाना चाहते, यह रोना रोती। ऐसी लड़की और ऐसी नारी विवाह करके न केवल अपना जीवन नष्ट करती है बल्कि अपने पति और अपने स्नेही-सम्बन्धियों को भी दुखित करती है। जो स्त्री खुद यह नहीं जानती कि उसका स्वास्थ्य ही वह नींव है जिस पर उसका भावी जीवन, उसकी गृहस्थी, उसके पति की प्रसन्नता तथा उसकी सन्तान का भविष्य निर्भर है; जो स्त्री यह नहीं जानती कि नीरोग और स्वस्थ काया ही स्त्री के रूप और सौन्दर्य, आकर्षण और मधुरिमा को बनाये रखने की कुंजी है और चाहे कैसा ही सरल, गम्भीर, गुणवान पति हो, पत्नी में ज़रा सी मिठास, पत्नी में ज़रा-सी चंचलता, ज़रा शोखी, ज़रा विनोद, और सरसता चाहता ही है, तब तक मानो वह विवाहित जीवन की बाराखड़ी से भी परिचित नहीं।

तीसरी चीज़ है बात करने का ढंग। मेरा मतलब यह नहीं कि वह साहित्य और विज्ञान के आधुनिक विषयों पर अधिकार के साथ वार्ता कर ही सके। मेरा मतलब यहाँ सिर्फ़ इतना ही है कि उसे जानना चाहिए कि किस विषय पर किस तरह और किस मौक़े पर कौन सी बात पति से कहनी है। अक्सर औरतें

रोदन और पीड़ा का सौदा करने वाली !

मौके-बेमौक़े अपना रोना रोया करती हैं और जब उनके दुखड़े का रजिस्टर खुलता है तब ख़त्म होने का नाम ही नहीं लेता। जब वे पति के दिल को पिघलाने और अपना काम बनाने से लिए रो रही होती हैं तभी मानो अपने भाग्य को मिट्टी में गाड़ रही होती हैं। समय बदल गया है। मैं मानता हूँ, एक पुश्त पहले का सीधा पति स्त्री के आँसू के सामने पानी हो जाता था। उस समय पत्नी के हाथ में रोदन और मान का ब्रह्मास्त्र था और वह अक्सर सफल भी होता था। आज का पति, इस विषय में, अपने पूर्वज से कई बातों में भिन्न है। उसकी परिस्थिति बदल गई है। उसके जीवन में संघर्ष पुराने ज़माने के पति से कहीं अधिक है। वह बदलते हुए युग का प्राणी है; अनेक प्रकार की खींचातानी से पूर्ण एक संघर्ष और कठिनाई का जीवन लिये, टेढ़े-मेढ़े मार्ग पर चलने वाला ! इसके साथ वह पुराना अस्त्र सफल नहीं हो सकता। नारी के पक्ष में यह एक बहुत बड़ी भूल होगी अगर वह अब भी समझती रहेगी कि रोकर, दुखड़े गाकर वह पति का दिल जीत सकती है। आज का पति दुःख से भागने वाला है; बाहर के जीवन में संघर्ष और दुःख यों ही इतने हैं कि घर के कलह को वह उदासीनता से नहीं देख सकता। इस थके, बहुश्रम-पीड़ित पति को पत्नी के दुखड़े बहुत जल्द उबा देते हैं। हर आँसू और हर कहानी के साथ उसका दिल फटता जाता है और उसकी कल्पनाएँ अभाव की प्रतिक्रिया से चोटीली हो स्वप्नलोक की तरफ उड़ती हैं। पति दुःखदायी स्थिति से भागना चाहता है पर मूर्ख स्त्री अपने दुखड़ों से बराबर उसका पीछा करती है। वह उसकी स्थिति को असह्य कर देती है। पति

चाहता है दो घड़ी हँसी-खुशी से बीते, पर स्त्री दिल फटने वाली बातें करती है। पति चाहता है, घर में तो उसे क्षण भर मनोरंजन और विश्राम की सुविधा हो पर स्त्री चैन नहीं लेने देती। अन्त में पति का धैर्य चुक जाता है और वह पहले पत्नी से मुँह चुराना शुरू करता है; फिर खुले तौर पर उसकी उपेक्षा करने लगता है।

कहा जायगा कि आख़िर स्त्री पति से अपने दुःख-सुख न कहेगी तो किससे कहेगी। हाँ, कहेगी वह सब कुछ, पर समय पर, और ढंग से। एक औरत समय को पहचान कर, ऐसे ढंग से बात करती है कि पति का हृदय पानी-पानी हो जाता है; कठोरता और विरक्ति की जगह उलटे मुलायमियत और प्रेम पैदा होता है; जितना औरत चाहती है, उससे ज़्यादा करा लेती है और सब कुछ आसानी से, हँसते-हँसते। दूसरी ऐसे बेमौक़े, और ऐसे भद्दे ढंग से बातें करती है कि ख़ुद उसका मतलब हल होना तो दूर रहा, उलटे और दुःख एवं और रोने का सामान जुटता जाता है! चक्रवृद्धि व्याज की तरह दुःख बढ़-बढ़ कर घनीभूत होता जाता है और एक दिन आता है कि न केवल प्रेम की पतंग कट जाती है बल्कि उसके उड़ाने का सामान भी ख़त्म हो चुका होता है। बस, यही नारी की मृत्यु है और यही पति की पर-नारी के प्रति आखेट प्रवृत्ति का आरम्भ है।

अगर औरतें ज़रा समझदारी से काम लें; सिर्फ भावना की धारा में बहने की जगह ज़रा संयम, ज़रा विवेक का उपयोग करें तो उनके जीवन का बहुत-सा दुःख अपने-आप दूर हो जाय पर स्त्रियों के साथ मुश्किल यह है कि वे प्रायः दुराग्रही और हठी होती हैं। जब उनके दिमाग़ में कोई बात आ जाती है तो जल्द निकलती नहीं। वे उसके पीछे पागल हो जाती हैं अपना बुद्धि-

विवेक खो बैठती हैं। किन्तु जिन्हें जीवन में सफलता और सुख चाहिए, उनको इन प्रवृत्तियों पर अंकुश तो रखना ही पड़ेगा और मेरा ख्याल है कि ये बातें कुछ कठिन नहीं; थोड़े अभ्यास से सहज ही स्त्रियाँ इसे कर सकती हैं। ऊपर जो बातें बताई गई हैं उनके सहारे स्त्रियाँ अक्षय यौवन-सुख के झरने तक पहुँच सकती हैं। मृदुता, मनोज्ञता, स्वास्थ्य, वाग्चातुर्य, सेवा, सहानुभूति, और अवसर-ज्ञान वे गुर हैं जिनको अपनाकर अधिकांश स्त्रियाँ पति-हृदय की रानी बन सकती हैं।

: ७ :

हमारे पति क्या चाहते हैं ?

कान्ता,

इस पत्र में मैं तुम्हें पुरुषों की आकांक्षाओं की एक झलक देना चाहता हूँ ताकि तुम जान सको कि विवाह के बाद पतियों को कैसे सन्तुष्ट किया जा सकता है।

इस सम्बन्ध में मुझे एक घटना याद आती है। कई साल हो गये। कानपुर की बात है। मैं अपने एक मित्र के यहाँ ठहरा हुआ था। फरवरी का महीना; दोपहर का वक्त—लगभग दो या ढाई बजे होंगे। खा पीकर मैं लेटा था। यह हमारे मित्र का पढ़ने-लिखने का कमरा था। इसी के बग़ल में उनका शयनागार था जिसे उनकी श्रीमती जी का कमरा कहना चाहिए। ये लोग मध्यम श्रेणी के गृहस्थ थे। पत्नी सुन्दरी और अच्छे स्वभाव वाली; पति शिक्षित, स्वस्थ और समझदार। किसी क़दर परदे और छूत-छात से भी ये लोग दूर थे।

मैं लेटा और अलसाया हुआ ज़िन्दगी की उड़ान और कल्पना के स्वप्न में मिले-जुले बहुतेरे आवश्यक-अनावश्यक सवालों पर विचार कर रहा था कि बग़ल के कमरे से स्वागत के शब्द सुनाई पड़े; फिर हँसी, खिलखिलाहट, मज़ाक और विनोदभरी छेड़-छाड़। मालूम हुआ, कई सखियाँ आई हैं और एक दूसरे से जवाब तलब किया जा रहा है कि चाँद इतने दिनों कहाँ भूला रहा। फिर सफाई दी जाने लगी। काम-काज की बातें हुईं।

ग़रज़ इसी तरह की हज़ार बातें। और इन्हीं बातों में कब और कैसे अपने-अपने पतियों की इच्छा-आकांक्षा की बातें छिड़ गईं, मैं कह नहीं सकता। फिर अनेक गोप्य और अगोप्य बातें। हर एक बारी-बारी से सुना रही थी कि उसके पति की उससे कैसी पटती है और वे क्या चाहते हैं। बीच-बीच में चुहल और चुटकी; प्रेम-भरे व्यंग। मुझे अनायास मनोरञ्जन का बढ़िया मसाला मिल गया था और मैं आँखें मूँदे लेटा हुआ इन सुनने और न सुनने योग्य बातों का मज़ा ले रहा था।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि उन बातों का अगर विस्तार से या हूबहू वर्णन किया जाय तो एक बहुत ही मनोरञ्जक और दिलों में गुदगुदी पैदा करने वाली रचना बन जायगी पर यहाँ मैं उन सब की चर्चा न करूँगा; कोई लाभ भी नहीं। हाँ, उनकी बातचीत के निष्कर्ष की कुछ बातें ज़रूर बताऊँगा जिनसे हमारी अविवाहित या नव-विवाहित बहिनें दाम्पत्य जीवन के सुख के रहस्य की जानकारी प्राप्त कर सकती हैं।

शीला और दमयन्ती, कान्ता और चन्दो, मनोरमा और सुशीला सब ने बारी-बारी से बताया कि उनके पति उनसे क्या चाहते हैं।

उनकी आकांक्षाएँ!

किसी ने कहा—वह चाहते हैं कि मैं सदा हँसती रहूँ। किसी ने कहा—वह औरत के सलीके, पहनने-ओढ़ने, शृङ्गार तथा बातचीत पर ज्यादा ध्यान देते हैं। एक ने कहा कि घर की व्यवस्था पर उनका ध्यान पहले जाता है। अगर घर में स्वच्छता है, हर एक चीज़ अपनी जगह पर अच्छी तरह रखी हुई है तो वे बहुत खुश होते हैं। दूसरी ने कहा—सबसे बड़ी चीज़ उनकी निगाह में औरत की वफ़ादारी है। फिर वे यह भी चाहते हैं कि मैं उनके साथ जीवन-सखी की तरह रहूँ! उनका और अपना दुःख-सुख

एक समझूँ, अनुभव करूँ; पर साथ ही बच्चों की माता हूँ इसका भी ध्यान दिलाते रहते हैं!

इसके अलावा और भी औरतों—सखी-सहेलियों के बारे में चर्चा चली और समय-असमय उन्होंने जो भी अपने पतियों के विषय में कहा था, नमक-मिर्च लगाकर दोहराया गया। फिर किसी ने यह भी कहा—"बहिन! मर्द सब एक से होते हैं। अपना मतलब निकालने में चतुर!"

विवाह की कठिनाई

पर उनकी नानी की कहानी को हम यहाँ छोड़ देंगे। असल में शीला और दमयन्ती, कान्ता और चन्दो, मनोरमा और सुशीला ने जो कुछ बताया सब ठीक था। दुनिया में हर तरह के आदमी होते हैं। कोई कुछ चाहता है; कोई कुछ। कोई अपनी औरत को विदुषी के रूप में देखना चाहता है, कोई चाहता है, वह ऐसी हो कि घर-गृहस्थी का बोझ खुशी-खुशी उठा ले। कोई चाहता है, वह रूपवती हो, मनहरण मुस्कुराहट के साथ स्वागत करे। हँसकर मीठी-मीठी बोली बोले, अपने को सुन्दर वस्त्रों से विभूषित रखे; इसके विरुद्ध कोई चाहता है कि उसकी पत्नी सती हो, सीधी, आज्ञाकारिणी, निर्मल और शान्त। मतलब, हज़ार तरह के आदमी दुनिया में हैं, और सब अपनी-अपनी धुन की पत्नी चाहते हैं। यह कहना बहुत मुश्किल है कि जब तुम्हारा विवाह होगा, तुम्हें कैसे पति मिलेंगे। अगर तुम पुराने प्रकार के घर की बेटी हो तो जिस आदमी के पल्ले पड़ोगी उसके विषय में लुका-छिपी, घर की नौकरानियों या छोटे बच्चों के ज़रिये जो कुछ जानकारी प्राप्त कर लोगी उसी पर तुम्हें सन्तोष करना पड़ेगा। अगर तुम सुधारक घर की लड़की हो, तुम्हारे माता-पिता परदा नहीं करते, विवाह तुम्हारी मर्ज़ी से

करते हैं और तुम लड़के के चुनाव में स्वतन्त्र हो तो भी इससे परिस्थिति में कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता। जहाँ प्रेम-विवाह होते हैं तहाँ और पुराने ढंग के विवाह में स्त्री की बाह्य परिस्थिति और सुविधाओं में जो अन्तर हो, आन्तरिक स्थिति के मामले में दोनों एक से हैं। यह जानना दोनों ही दशाओं में लगभग एक-सा कठिन है कि हमारे पति अन्त में कैसे निकलेंगे और जीवन के संघर्ष के बीच क्या करने से उनका प्रेम प्राप्त हो सकेगा।

इसलिए अच्छा यह होगा कि तुम कुछ ऐसी बातों पर ध्यान दो और उनसे लाभ उठाने का यत्न करो जिन्हें प्रायः पुरुष पसन्द करते हैं। विवाह एक जुआ है पर यत्न करके उसे एक कला का रूप भी दिया जा सकता है। अगर तुम अपने भीतर वे कुछ आवश्यक विशेषताएँ उत्पन्न कर लोगी जिनकी तरफ़ ज्यादातर पुरुष झुकते हैं तो विवाह के जुए में तुम्हें जिस तरह की इच्छा वाला पति मिले, आशा की जा सकती है कि तुम उसे नाथ लोगी, उसे प्रसन्न रख सकोगी; कम से कम इतना इतना तो होगा कि तुम्हारी गृहस्थी में बर्तनों की टकराहट की भद्दी आवाज़ न सुनाई पड़ेगी।

पहली बात जिसे ज्यादातर पति चाहते हैं, स्त्री की वफ़ादारी है। वफ़ादारी का मतलब यह है कि तुम अपने पति को हृदय से मानने और अनुभव करने की चेष्टा करो।

वफ़ादारी

तुम समझो कि तुम जहाँ भी हो, जिसके साथ भी हो पति ही तुम्हारे जीवन-वृत्त का केन्द्र-विन्दु है। तुम्हारी दुनिया उसी के द्वारा है, उसी को लेकर है, उसी से है और उसी के साथ है। तुम्हारे लिए उस स्थान पर दूसरा पुरुष नहीं है। यदि कभी तुम्हारे मन में किसी अन्य पुरुष के प्रति आकर्षण रहा भी हो तो उसे भूल जाने की

चेष्टा करो। व्यावहारिक दृष्टि से भी यही बात तुम्हारे लिए लाभदायक और सुखकर होगी। जो मिल नहीं सकता या जो दूर चला गया है, जिसके और तुम्हारे बीच एक व्यवधान आ गया है उसे याद रखकर अपने हृदय को जलाना और अपनी दुनिया को बिगाड़ना कोई बुद्धिमानी नहीं। भावनाओं का मूल्य जीवन में बहुत है पर भावनाओं से ही जीवन की गाड़ी न चलेगी! सामने जो सत्य और वास्तविकता का क्षेत्र दूर तक फैला हुआ है उसे देखकर चलने में सुख भी है, कल्याण भी। इसलिए पुरानी बातें भुला कर पति में केन्द्रित होने, उनके साथ अपने जीवन की एकाग्रता और तन्मयता अनुभव करने की कोशिश करो। मैं इसे असम्भव नहीं मानता। इस कार्य में न केवल परम्परा स्त्री की सहायक है बल्कि उसकी स्थिति के अनुसार अपने को ढाल सकने की क्षमता भी इसके अनुकूल है। मतलब यह है कि तुम अपने पति के प्रति सच्चाई और ईमानदारी की ज़िन्दगी व्यतीत करो। तुम्हारे लिए जिस स्थान पर तुम्हारा पति है उस स्थान पर दूसरा नहीं है। इस दिशा में तुम्हें अपने पति को पूर्णतः आश्वस्त कर देना होगा कि तुम उसी की हो। जब कोई पति यह अनुभव कर लेता है कि उसकी स्त्री सम्पूर्णतः उसी की है तो वह सुख की साँस लेता है और उसकी अहंवृत्ति तृप्त हो जाती है। तब पति अक्सर अपनी पत्नी के प्रति कोमल हो जाता है। उसके प्रति एक तीव्र निजत्त्व का भाव जाग्रत होता है और उसका हृदय पत्नी के प्रति एक गहरे आकर्षण से भर जाता है।

इस वफ़ादारी का यही मतलब नहीं है कि तुम किसी दूसरे पुरुष की कामना नहीं करती या किसी अन्य पुरुष के प्रति तुम्हारे दिल में कोइ खिंचाव, कोई आकर्षण नहीं है। वफ़ादारी का

मतलब यह है कि तुम मन से, और आचरण-द्वारा भी, अपने पति और उनकी दुनिया जिनको लेकर है उनकी कल्याण-कामना करती हो; उनको सुखी रखने, सन्तोष देने और उनकी सेवा की सच्चाई से चेष्टा करती हो। जीवन में जिसे तुमने वरण कर लिया है, भले ही अनिच्छा से हो, उससे पलायन सम्भव नहीं है। चाह कर भी सम्भव नहीं है। तुम जहाँ जाओगी, कटु स्मृतियों को साथ ले जाओगी। तब अच्छी नीति यही है कि उसको लेकर चलो, उससे मिलकर चलो, उसकी होकर चलो।

वफ़ादारी के अन्दर एक और भाव अपनेपन का भी होता है। तुम्हारे पति जैसे भी हैं तुम्हारे हैं। तुम उनकी हो, वे तुम्हारे हैं। दोनों धर्म्म से, या इसे न भी मानो अपनेपन का भाव तो परिस्थिति और संस्कार से, जुड़ गये हैं। उनका दोष तुम्हारा दोष है, उनका गुण तुम्हारा गुण। मैंने अनेक स्त्रियों को देखा है और तुम सबने देखा होगा कि प्रायः उन स्त्रियों में भी यह निजत्त्व का भाव होता है जो पति से झगड़े भी कर लेती हैं। उनके झगड़े उनके हैं। दूसरा कोई पति को कुछ कहे तो पत्नी अपने को अपमानित अनुभव करती है। जो स्त्री इस निजत्त्व का अनुभव करती है, और अधिकांश स्त्रियों में यह भाव प्रबल होता है, वह अपने पति को अपमानित नहीं करती, न किसी के सामने उसका उपहास करती है। वह दूसरों के स्वर्ण-मन्दिर को देखकर क्या करेगी, उसे तो उसकी झोपड़ी से ही छाया और आश्रय मिलने वाला है। इस निजत्त्व के अनुभव में जो प्रेम का भाव है उसी को लेकर नारी युग-युग से मानव-सभ्यता की यात्रा पूरी कर रही है। इसी को लेकर उसने अपने सपनों का संसार रचा है। इसी को लेकर उसने दुर्गम मार्गों को पार किया है और कष्ट और पीड़ा का

काल इसी के सहारे उसके सामने से निकल गया है। इसलिए पति के प्रति ईमानदारी, वफ़ादारी, निजत्त्व का अनुभव पहला गुण है जिसे दुनिया के हर हिस्से में, और हर तरह के पति, अपनी पत्नी में चाहते हैं। इसके बिना नारी पत्नी नहीं, केवल एक रखेल है। और दोनों के बीच का सम्बन्ध अनैतिक है। कटु और स्पष्ट भाषा में उसे व्यभिचार भी कहा जा सकता है।

इसलिए ज़रूरी है कि तुम अपने पति के प्रति इस प्रकार की ईमानदारी और वफ़ादारी का अनुभव करो और बर्ताव भी तदनुकूल करो। इसी को स्त्री का सत् कहा गया है पर प्रायः स्त्रियाँ समझती हैं कि उनका किसी अन्य पुरुष की ओर न झुकना ही यथेष्ठ है। मैंने कितनी ही स्त्रियों को देखा है जो शारीरिक सम्बन्ध में पवित्र हैं, पर-पुरुष की ओर निगाह नहीं उठातीं, किन्तु पतियों से लड़ती रहती हैं, ज़रा-ज़रा सी और बेमतलब बातों के लिए उन्हें दुखी करतीं और खुद भी दुखी होती हैं। इस प्रकार का सतीत्व बिल्कुल व्यर्थ है और जीवन में उसका कोई लाभ नहीं मिलने वाला है। जहाँ सत् है, तहाँ पति के कल्याण की आन्तरिक कामना है, तहाँ प्रेम है, मृदुता है, तहाँ जीवन व्यावसायिक नहीं है, वह सरल और सीधा है। सत् या सतीत्त्व में अन्य पुरुषों की ओर ध्यान न देना ही यथेष्ट नहीं है, अपने पति में तन्मयता भी आवश्यक है। सती स्त्री के मन में कभी अपने पति के अकल्याण की भावना नहीं आ सकती।

दूसरा गुण, जिसे ज्यादातर पति अपनी पत्नियों में चाहते हैं उनकी व्यवस्था रखने की शक्ति है। बहुत ही कम पति ऐसे मिलेंगे

व्यवस्था और सजावट

जो अपने घर को खानाबदोशों के डेरे के रूप में देखना चाहते हों। हर एक पति चाहता है कि उसका घर घर मालूम पड़े जिसमें हर चीज़

व्यवस्था से रक्खी हुई और हर काम क़ायदे से हो। जिस चीज़ की जहाँ जरूरत हो वह वहीं होनी चाहिए और वह भी इस ढंग से कि देखने में अच्छी और सुन्दर दिखाई पड़े। जिस स्त्री में व्यवस्था-शक्ति नहीं है, वह पत्नी होने के अयोग्य है। क्योंकि प्रत्येक पत्नी पति के साथ गृहस्वामिनी है। हमारे यहाँ उसे गृह-लक्ष्मी की जो संज्ञा दी गई है वह अर्थहीन नहीं है। अच्छी और चतुर गृहणी के हाथ में घर हँसता हुआ मालूम पड़ता है और फूहड़ स्त्री के हाथों विधवा के समान विशृङ्खल, अव्यवस्थित और हर जोड़ से टूटा हुआ। फिर क्रम और व्यवस्था से जीवन की बहुत से झंझटों से रक्षा हो जाती है। इसलिए बेटियो, अच्छा हो हर चीज़ को क़ायदे से रखने और हर काम को क़ायदे से करने की आदत डालो। क्या यह तुम्हें अच्छा लगेगा कि जब तुम्हारे पति स्नानागार में प्रवेश करें तब तुम धोती और कपड़े ढूँढ़ती फिरो, और उधर तुम्हारा तवा जल रहा हो? या जब तुम लोग बाज़ार या सिनेमा या किसी मित्र या सम्बन्धी के घर चलने को तैयार हो तब तुम कमीज़ में बटन टाँकने बैठ जाओ—और उस वक्त सुई न मिलती हो?

वह भयानक बिखरा घर!

क्या यह अच्छा है कि जब शीशा मिले तो कंघी गायब हो और कंघी मिले तो तुम तेल की शीशी ढूँढ़ती फिरो? एक तरह की और एक जगह या एक समय काम आने वाली सब चीज़ें निश्चित स्थान पर साथ होनी चाहिएँ ताकि जब किसी चीज़ की ज़रूरत हो उठा ली जाय। चीजें इस तरह रखी होनी चाहिएँ कि अँधेरे में भी बिना कष्ट के वहाँ से उठा ली जा सकें। यह बात बड़ी खिझानेवाली है कि किताबों के ऊपर कपड़े हों और कपड़े रखने के स्थान पर ग्लास और तश्तरियाँ फैली हों

या जहाँ खाना खाने की जगह है वहाँ कचरा या छिलका पड़ा हो और सोने की चारपाई के नज़दीक झाड़ू बिखर रही हो। न यही ठीक है कि भोजन के कमरे या भण्डारे में हर चीज़ यों फैली हो जैसे वह घर छोड़कर घर वाले किसी दूर देश की यात्रा करनेवाले हों। हर चीज़ ठिकाने और करीने से, अपने स्थान पर, सजी हुई हो। बहुतेरे पति खुद बड़े अव्यवस्थित होते हैं। कहीं किताबें छोड़ दीं, कहीं पैसे रख दिये, कहीं कपड़े बिखरा दिये। हजामत का सामान कहीं पड़ा है तो जरूरी कागज़-पत्र कहीं रख दिये गये हैं। अपने पति की यह कमी तुम्हें पूरी करनी पड़ेगी क्योंकि ऐसा आदमी भी चाहता यही है कि उसकी पत्नी घर बनाने वाली हो, उसकी तरह उधेड़ने वाली नहीं।

स्वास्थ्य जीवन का मेरुदण्ड है

तीसरा गुण, जो हर तरह के पति के साथ जरूरी है तुम्हारा स्वास्थ्य है। अगर स्त्री स्वस्थ न हुई तो मानो कुछ न हुई। तब वह अपने लिए भार, पति के लिए निकम्मी, सन्तान के लिए एक बोझ है। ऐसी स्त्री कभी अपने पति का हृदय जीत न सकेगी। वह लाख यत्न करे, कभी अपने पति को आकर्षित न कर सकेगी। ऊपर से दोनों में चाहे जैसी बातें हों अन्दर से पति ऐसी स्त्री से दूर भागता है, आँख बचाता है। आख़िर आदमी कब तक इस तरह का बोझ सँभाल सकता है? कोई चीज़ पति के दिल को इतना नहीं उबाती जितना स्त्री का सदा बीमार रहना। पुरुष काम-काजी आदमी होता है; वह व्याह करके जीवन के संघर्ष के बीच मनोरञ्जन की आशा करता है और यह भी चाहता है कि पत्नी उसे घरेलू चिन्ताओं से मुक्त कर देगी। प्रत्येक पति तफ़सील की झंझटों से भागने वाला होता है। अगर व्याह के बाद झंझटें इस तरह बढ़ने लगें कि मनोरञ्जन की जगह, विवाह

और उस विवाह से मिली स्त्री उस पर बोझ बन कर बैठ जाय तो वह खीझ उठता है। जीवन भार हो जाता है। भली बातें बुरी हो जाती हैं। सुख दुःख में बदल जाते हैं। एक लम्बी अंध निशा सम्पूर्ण घर पर छा जाती है—ऐसी निशा जो जीवन के सम्पूर्ण स्वप्नों का अन्त कर देती है। स्त्री के अस्वस्थ रहने से घर का प्रत्येक तन्तु बिखर जाता है। बच्चे अलग अनाथ की तरह घूमते और बिलबिलाते हैं, नौकर-चाकर अलग उल्लू सीधा करते हैं। तब आदमी का दिल खिंचने लगता है और उसकी निगाहें दूसरी स्त्रियों की ओर उठती हैं।

पुरुष का ढंग

अभी-अभी इस तरह का दृष्टान्त मेरे सामने आया है। मेरे एक सम्बन्धी हैं। कुछ दिन हुए, उनके विवाह का निमन्त्रण मुझे मिला। निमन्त्रण पाकर मैं चकराया क्योंकि एक ही साल पहले उनकी शादी हुई थी। लड़की को ठोंक-पीट कर उन्होंने शादी की थी। अच्छे धनी माँ-बाप की लड़की थी; देखने-सुनने में अच्छी, रूप-रंग से भी भली। एक दोष था—उसे मृगी के दौरे होते थे ! माँ-बाप ने गृह-कार्य का सब खर्च भी देना मंजूर किया। कहा—एक ब्राह्मणी रख लो, हम लोग उसका खर्च देंगे। लड़की बेचारी इतनी भली कि खुद अपनी हालत पर रोती; कोशिश करती कि काम सँभाले, कुछ करे—कहती भी मेरे कारण उनको बड़ी तकलीफ़ होती है। ऐसी मधुर बोली कि क्या कहें !

फिर भी शादी का निमन्त्रण मेरे पास आ गया। मैं शादी में तो क्या जाता—मुझे ऐसी शादियाँ शादी के नाम पर व्यङ्ग-सी लगती हैं और जब एक औरत घर में बैठी हो दूसरी लाने के यत्न में सम्मिलित होना होश-हवास ठीक रहते मेरे लिए असम्भव

है। मित्र और सम्बन्धी इसे जानते हैं। फिर भी निमन्त्रण मेरे पास आ ही गया!

पर इन लोगों ने तो इसका समर्थन जोरों से किया। दबी ज़बान मेरे घर की औरतों ने भी किया और अभी उन सज्जन की एक बहिन, संयोग-वश, मेरे यहाँ आईं तो उन्होंने भी कहा—आखिर कब तक इस तरह चल सकता है? उनका क्या दोष है? आखिर वह कब तक प्रतीक्षा कर सकते हैं। स्त्री के अच्छे होने के कोई लक्षण नहीं।

नीति की दृष्टि से इस सवाल का जो भी पहलू हो, हर मर्द अनुभव कुछ इसी तरह का करता है—'आखिर कबतक इस तरह चल सकता है?' सच है, बहुत ही कम मर्द होंगे, जिनका इस तरह भी चल सके। यह हो सकता है कि पुरुष बहुत शिष्ट हो और दूसरी शादी न करे पर बीमार स्त्री के प्रति वह लगावट, वह रुझान, वह आत्मीयता, वह अन्तःसाख्य कभी अनुभव नहीं कर सकता जो पति-पत्नी के बीच होना चाहिए। उसका दिल उड़ा-उड़ा फिरता है।

वैसे भी इसमें कई प्रकार की शारीरिक और व्यावहारिक जटिलताएँ पैदा हो जाती हैं जिनको हर औरत समझती है इसी· लिए मैं उनका ज़िक्र यहाँ छोड़ देता हूँ। इतना ही कहना बस है कि स्त्री का स्वास्थ्य वह धुरी है जिस पर सम्पूर्ण गृहस्थी का संसार घूमता है। इसलिए तुमको चाहिए कि तुम सबसे पहले अपना स्वास्थ्य बनाओ। वैसे भी सुख-दुःख में यह स्वास्थ्य ही तुम्हारे काम आवेगा, पढ़ना लिखना, ज्ञान और शिल्प सबसे अधिक काम की यही चीज़ निकलेगी।

चौथी चीज़, जिसे हर तरह का पति पसन्द करता है, स्त्री का हँसमुख स्वभाव और उसकी मृदुता है। हँसमुख स्त्री गृह-

मधुर और दिल जीतने वाली हँसी

जीवन का वह दीपक है जो जीवन के दुष्काल और अन्धकार में भी जलता रहता है। और जिसके प्रकाश में जीवन की अँधेरी गलियाँ पार की जा सकती हैं। घिरते हुए बादल क्षण भर में छँट जाते हैं और चाँदनी फैल जाती है। दुर्भाग्य और निराशा सौभाग्य और आशा में बदल जाती है। पर हँसमुख स्वभाव का यह मतलब नहीं कि तुम हमेशा ही-ही करती रहो या सदा खिल-खिलाती और अट्टहास करती रहो। अगर ऐसा है तो बिल्कुल उलटा असर होगा। यह क्या कि जहाँ तुम्हें जरा गम्भीरता रखनी है वहाँ तुम अट्टहास करने लगो, जहाँ सहानुभूति और समवेदना प्रकट करनी है तहाँ खिलखिला पड़ो। नहीं, हँसना भी मौक़े पर ही होता है। मेरा अभिप्राय इतना ही है कि वह स्त्री, जो हर वक्त मातमी चेहरा बनाये रखती है, जो हँसने के समय मुँह लटका लेती है कभी सुखी नहीं हो सकती। अपना ही जीवन उसके लिए एक बोझ हो जाता है, दूसरों को वह क्या सुखी करेगी ? तुम्हारा चेहरा हर वक्त गुलाब की तरह खिला होना चाहिए। जिससे मिलो, उसे ज़रा हँसने की, प्रसन्न करने की कोशिश करो। वैसे भी हँसना स्वास्थ्य के लिए एक 'टानिक' है। जब तुम्हारे पति काम पर से घर लौटें, हँसते हुए उनका स्वागत करो, दो-एक मीठी बात करो; उनकी सारी थकावट दूर हो जायगी। अगर कोई मेहमान आवे तो स्थिति तथा मर्यादा के अनुसार उससे हँसो, बोलो; उसके सुख-दुःख पूछो; वह तुम्हारे सम्बन्ध में बड़ी अच्छी सम्मति लेकर लौटेगी या लौटेगा। बच्चों से हँसकर दो मीठी बातें करोगी तो वे तुम्हारे गुलाम हो जायँगे। याद रखो, बच्चे सदा प्यार और प्रसन्नता के भूखे रहते हैं, वे चाहते हैं कि तुम उनसे हँसो, खेलो और उनमें उन जैसी बनकर रहो।

पाँचवी बात जिसे तुम्हारे पति पसन्द करेंगे—फिर चाहे वे किसी श्रेणी के पति हों और ऊपर से कुछ भी कहते हों—तुम्हारा साफ़-सुथरा रहना है। कपड़े-लत्ते का शौक़ रखने वाली स्त्री अक्सर पति की प्यारी होती है। मर्द यह पसन्द करता है कि उसकी औरत को देख कर कोई यह न कहे कि क्या भुतनी को घर में डाल रखा है, या कपड़े-लत्ते से बेचारी को बड़ा कष्ट है। बात यह है कि पुरुष सामाजिक सम्मान का बड़ा ख्याल रखने वाला प्राणी है। वह चाहता है कि कोई उसकी तरफ़ अँगुली न उठाये और इसीसे वह स्त्री के लिए अपनी हैसियत से ज्यादा खर्च करने की कोशिश करता है। तुम घर में क्या खाती-पीती हो, किस तरह रहती हो, इसे कौन जानता है? दुनिया तो ऊपर से देखकर ही तुम्हारे सुख-दुःख का अन्दाज़ लगाती है। अगर तुम्हारे घर में सब कुछ भरा पड़ा है पर तुम बहुत मामूली कपड़े पहनकर सखी-सहेलियों के यहाँ या व्याह-शादी में या रिश्ते-नाते में जाती हो तो लोग यही समझते हैं कि तुम्हारा गुज़ारा मुश्किल से हो रहा है, या तुम कष्ट में हो या कंजूस हो। औरतों का ध्यान सबसे पहले औरतों की वेश-भूषा पर जाता है। इसलिए तुम्हारा पति यह बर्दाश्त नहीं कर सकता कि तुम—जिसके लिए वह रात दिन खप रहा है—ऐसी वेशभूषा रखो कि लोगों को ग़लतफ़हमी का मौक़ा मिले। वह यह कभी पसन्द न करेगा कि चार स्त्रियाँ उसकी पत्नी को देखकर कहें—'बेचारी बड़े कष्ट में है। घर वाला इतना कमाता है पर इसकी कुछ परवाह नहीं करता।'

सुरुचिपूर्ण वेश-भूषा

वस्त्रभूषा का एक दूसरा—निजी—पहलू भी है। बात यह है कि पति-पत्नी के पारस्परिक सम्बन्ध में शारीरिक आकर्षण का

महत्व कुछ कम नहीं है। अधिकांश पतियों के लिए तो यह एक प्रधान वस्तु है। स्त्री को इसे समझना चाहिए कि पुरुष चाहे खुद कैसा ही मरियल और भोंडी सूरत का हो चाहता वह यही है कि स्वर्ग की अप्सरा उसे मिल जाये। वह केवल स्त्री के गुणों का ही भूखा नहीं होता, उसके रूप का भी प्यासा होता है। तुम कहोगी, यह कैसे सम्भव है कि हर स्त्री अप्सरा हो और विवाह तो प्रायः हर औरत को करना ही है। यह ठीक है कि हर औरत सौन्दर्य की देवी नहीं होती, न सबको ऐसा रूप ही प्राप्त होता है कि देखते ही मर्द लोटन कबूतर बन जाय। पर इसके साथ स्त्री के यौवन में पुरुष को प्राकृतिक रूप से ही एक आकर्षण का बोध होता है। इस शारीरिक आकर्षण के कुछ गम्भीर प्राकृतिक कारण होते हैं। शरीर में कुछ ऐसे द्रव और रस बनते हैं कि दुनिया रंगीन और सुन्दर दिखती है। यद्यपि हर स्त्री उर्वशी और रंभा नहीं होती परन्तु आन्तरिक रूप से हर स्त्री में उर्वशी और रंभा का आकर्षण होता है; उसमें एक मोहनी होती है जो यौवन काल के आरम्भ में उसमें एक नशा पैदा कर देती है और इस नशे से न केवल वह पुरुष को वश में करती है बल्कि इससे आत्म-समर्पण का कठिन कार्य भी सरल हो जाता है। स्त्री को जो मोहनी मिली है, वह उसके स्त्रीत्व और मातृत्व की एक बड़ी पूँजी है। उचित है कि हर औरत इसे समझे, अपनी इस जादू डालने की शक्ति को बहुत समझ-बूझकर खर्च करे; उसे अधिक से अधिक दिनों तक सुरक्षित रखे और बाह्य साधनों से, श्रृंगार और प्रसाधन से भी, एक सीमा तक, बढ़ाने की चेष्टा करे। वस्त्र-भूषा से इस कार्य में उसे सहायता मिल सकती है। एक स्त्री मामूली कपड़े को भी ऐसे अच्छे और आकर्षक ढंग से

यह आकर्षण व्यर्थ नहीं है !

पहनती है कि चित्त प्रसन्न हो जाता है, दूसरी पचास की साड़ी को भी ऐसे भद्दे ढंग से पहनती है कि देखकर खीझ उठती है। अगर नारी को रंगों के चुनाव और मिश्रण का भी ज्ञान हो तो क्या कहना ? पहले की स्त्रियाँ इसे जानती थीं। तुम्हें जानना चाहिए कि किस रंग की साड़ी तुम पर खिलती है, या किस रंग की साड़ी पर कैसा ब्लाउज़ वा जम्पर पहनना चाहिए। आँखों में हँसी, ओठों पर मधुर मुस्कान, शरीर के अंग-अंग में खेलता और दौड़ता हुआ स्वास्थ्य तथा यौवन, और इन सब के आकर्षण को बढ़ानेवाली वेशभूषा, पहनने-ओढ़ने में सुरुचि और समयानुसार परिवर्त्तन इसे जानने वाली स्त्री सहज ही अपनी उस मोहनी को दीर्घकाल तक बना रखने में सफल होती है जो उसने एक दिन विवाह के आरम्भ काल में अपने पति पर डाली थी। समस्त प्राकृतिक जगत् में रूप का उपयोग भी है। इससे स्त्री-पुरुष का वह आकर्षण अधिक सक्षम होता है जिसके द्वारा सच्चे मिलन तथा सन्तति-उत्पादन द्वारा जाति का प्रवाह क़ायम रहता है।

इनके अलावा एक और बात मैं तुमको बता दूँ क्योंकि इसके बिना पुरुषों की आदत की पूरी जानकारी तुम्हें न होगी। हर

वात्सल्य की प्यास

एक पति जहाँ यह चाहता है कि उसकी स्त्री उसकी जीवन-संगिनी बन कर रहे तहाँ वह यह भी चाहता है कि वह ज़रूरत पड़ने पर अपने अन्दर जो मातृत्व है उसका लाभ भी उसे दे। जब पुरुष दुःख और कष्ट में होता है, जब वह बीमार पड़ता है, जब उस पर अनायास कोई विपत्ति आ जाती है तो सदा उसे माँ की याद आती है। आश्रय के लिए उसका दिल तड़पता है। ऐसे मौकों पर वह चाहता है कि उसकी स्त्री न केवल बेटी की भाँति उसकी

सेवा और पत्नी की भाँति उसे अपने प्रेम का आश्वासन दे बल्कि माता की भाँति उसे अपनी ममता की छाया तले ले ले। बीमार मर्द चाहता है कि पत्नी उसका सिर गोद में रख कर सहलाये, उसे धीरज बँधाये, और बार-बार कहे कि जब कोई उसका न रह जाय तब भी वह उसकी है। *पुरुष स्त्री के आगे सदैव बच्चा है और यही स्त्री की शक्ति का रहस्य है।* जो स्त्री इसे समझती है कि उसे समय-समय पर बेटी, बहिन, जीवन-संगिनी और माता सबके पार्ट करने हैं वही विवाहित जीवन में सफल होती है। फिर स्त्री को न केवल आचरण से ये पार्ट करने होंगे बल्कि उसके साथ वाणी का भी उपयोग करना होगा। पुरुष की आदत है कि स्त्री का प्रेम और सेवा पाकर ही वह सन्तुष्ट नहीं हो जाता, वह चाहता है कि बार-बार स्त्री उसे प्रेम का आश्वासन देती रहे; बार-बार कहती रहे कि मैं तुम्हारी हूँ और तुम्हीं को लेकर मेरा अस्तित्व है ; बार-बार कहती रहे कि तुम्हारे चरणों में आश्रय पाकर मैं धन्य हो गई हूँ और तुम्हारे बिना जीवन की कल्पना ही सम्भव नहीं है। मानव-सम्बन्धों का आधार कुछ ऐसा जटिल और बनावटी हो गया है कि केवल ईमानदारी ही सुखी जीवन बिताने के लिए पर्याप्त नहीं है। ईमानदारी के साथ ईमानदारी का अभिनय करने की भी ज़रूरत पड़ती है। विवाहित जीवन में तो यह अभिनय बहुत आवश्यक है। क्योंकि 'अनबोला' प्रेम पाकर तृप्त हो जाने वाला प्राणी यह पुरुष नहीं है। वह स्त्री के मुख से बार-बार उस प्रेम की घोषणा भी चाहता है। इससे उसका अहंकार तृप्त हो जाता है। उसके दिल की कली खिल उठती है और वह एक प्रकार के विजयोल्लास का अनुभव करता है। समझता है कि कोई औरत मेरी भी है—सर्वथा मेरी, और जिसकी ज़िन्दगी मेरे जीवन के तारों से बँधी है ; जिसका सब

कुछ मेरा है—केवल मेरा। यह अनुभव पुरुष को पागल बना देने को काफ़ी है।

इनके अतिरिक्त एक और बात मैं तुमसे कहूँगा। हर स्थिति में सुखी और सन्तुष्ट होने का स्वभाव डालो। कभी-कभी सब गुण होते हुए भी परिस्थितियाँ मनुष्य के साथ मज़ाक करती हैं। ऐसे समय केवल तुम्हारा धैर्य और सन्तोष तुम्हारे काम आयेगा। अपने हृदय के विश्वास और आशा को कभी बुझने न दो। चाहे सब लोग विपरीत हो जायँ पर जब तक तुम्हारे अन्दर आशा की ज्योति है तभी तक मानो आस्तिकता है—तभी तक जीवन जीवन है। आत्म-श्रद्धा और आत्म-विश्वास प्रत्येक व्यक्ति के लिए सबसे अधिक आवश्यक वस्तुएँ हैं। इनके रहते मनुष्य हर प्रकार के कष्ट उठा सकता है और दुःख में भी सुखी, विपत्ति में भी जागरूक रह सकता है।

मैं यह नहीं कहता कि जो उपाय मैंने बताये हैं, वे रामबाण हैं। पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इन बातों का कुशलता-पूर्वक पालन करने से अधिकांश पत्नियाँ अपने पतियों को वश में रख सकती हैं।

: ८ :

सुखी विवाहित जीवन का रहस्य

प्रिय कान्ता,

आज तुम्हें कुछ और जरूरी बातें लिखना चाहता हूँ। तुमने मेरे पिछले पत्र का उत्तर नहीं दिया। ऐसा तो कभी न होता था। मुझे भय है, कहीं तुम बीमार तो नहीं पड़ गई।

दुनिया में सदा से कहा जाता रहा है कि विवाह एक जुआ है, कौड़ी पड़ गई तो लाखों अपने हैं, नहीं तो जो कुछ था वह भी पराया है। और जुए में कौन जानता है कि कौड़ी किधर पड़ेगी। कोई पुरुष नहीं जानता कि उसे हंसिनी मिलेगी या भोंड़ी गिलगिलिया; और न कोई लड़की जानती है कि उसके भाग्य में हंस है या कौआ। क़िस्मत ने साथ दिया तो ज़िन्दगी प्रकाश से पूर्ण हो गई, और पासा उलटा पड़ा तो फिर अँधेरा ही अँधेरा है।

विवाह जुआ है

पर मेरा ख्याल है कि इस वक्तव्य में केवल आंशिक सत्य है। विवाह जहाँ एक जुआ है तहाँ एक कला, एक जीवन-शैली, एक विज्ञान भी है। असल में विवाह एक आश्चर्यजनक सौदा है। तुम सोचो तो खुद इसे अनुभव करोगी। क्या यह आश्चर्यजनक नहीं कि विवाह करते ही जो पराये थे, अपने हो जाते हैं और जो अपने थे, वे दूर पड़ जाते हैं। भले ही एक नई बहू अपने माता-पिता से बिछुड़ते हुए रोये पर जो अपनापन, जो निजत्व और गोप्य विश्वसनीयता उसे अपने पति के निकट

पर एक कला भी है

अनुभव होती है वह माता-पिता के यहाँ भी अब अनुभव नहीं होती। देन-लेन सब में यही भाव रहता है कि अमुक क्या कहेंगे, अपने घर में जैसे रह लूँ पर भाई-बहनों तथा अन्य लोगों के सामने तो ऐसा करते नहीं बनेगा कि हेठी हो। उसकी बातों और भावनाओं में 'अपने घर' की प्रेरणा अवश्य होती है। इस 'अपने घर' के सम्बन्ध में कुछ कहते हुए, कुछ करते हुए वह एक अधिकार, एक प्रकार के 'स्वामित्त्व' का अनुभव ज़रूर करती है! निजत्त्व का यह भाव आश्चर्यजनक है। यह गृह-जीवन की एक मुख्य कुंजी है।

कैसा परिवर्तन !

अभी कुछ ही दिन पहले की बात है कि एक लड़की की शादी हुई। यह एक हठीली लड़की थी और हम इसे भलीभाँति जानते थे। जब-जब विवाह के विषय में उसकी राय जानने की चेष्टा की गई, वह मौन रही या उसने टाल दिया। मैं स्वयं चाहता था कि इसकी शादी किसी अच्छी जगह हो और मैंने बारम्बार उससे उसकी राय जानने की चेष्टा भी की पर कभी उसने अपना हृदय नहीं खोला। कभी अपनी इच्छा-अनिच्छा के विषय में कुछ नहीं कहा। माता-पिता ने विवश होकर एक पढ़े-लिखे युवक से उसकी शादी तय कर दी। मुझे भी इस शादी में जाना पड़ा था। वहाँ मैंने देखा कि लड़की इस शादी के बिल्कुल विरुद्ध थी और उसने खाना-पीना तक छोड़ रखा था। वह इसके लिए माता-पिता को कोसती थी तथा जिससे शादी हो रही थी उसके सम्बन्ध में भी अनेक अप्रिय बातें कहती थी। मैंने उसे समझाने की चेष्टा की और इस तरह की बातों से उसे विरत करना चाहा पर पूरी तरह असफल रहा। वह जली बैठी थी और यों बातें करती थी मानो कब्र में उसे गाड़ने की व्यवस्था की जा रही हो।

वह बराबर कहती रही—जहर दे देना इससे ज्यादा अच्छा होता। मुझे वह अपना हितैषी मानती थी इसलिए बारबार मुझसे कहती—आपने भी मेरी रक्षा न की। अब मैं क्या बचूँगी और यह कि इस जीवन से मृत्यु अच्छी है। उसके रंग-ढंग से यहाँ तक भय होता था कि कहीं वह आत्म-हत्या न कर ले या कोई और अनिष्ट कांड न कर बैठे इसलिए मैं विवाह के दिनों में बराबर उसे समझाता रहा।

पर विवाह होना था और हो गया। इस लड़की के पत्र मेरे पास प्रायः आया करते थे पर विवाह के बाद उनमें आश्चर्य-जनक कमी आ गई। एक बार उसने सफ़ाई देते हुए लिखा—"छुट्टी कम मिलती है। काम-काज में समय निकल जाता है। अब तो मन-तन इन्हीं लोगों में फँस गया है। चाहे जैसे हों ये अपने हैं और इन्हीं में ज़िन्दगी गुज़ारनी है।"

इस लड़की ने जो लिखा और जो अनुभव किया वही प्रायः सब स्त्रियाँ अनुभव करती हैं। स्वभावतः स्त्रियाँ अधिक यथार्थ-वादिनी होती हैं और स्थिति को पुरुष से कहीं जल्द समझने और ग्रहण करने वाली। अपने 'घर वाले' के प्रति, विवाह के साथ ही, एक अद्भुत अपनापन वे अनुभव करने लगती हैं। कल तक जहाँ जाने में दिल हिचकता था, अब विपदा में वहाँ दौड़ता है। तब माता-पिता का घर पराया हो जाता है और पति का नया-नया घर अपना। दुनिया ही बदल जाती है।

हृदय के, स्थिति और मर्यादा के, एकीकरण की यह अनुभूति गृहस्थ जीवन की धुरी है। इसी को लेकर सब कुछ बनता और बिगड़ता है। इसी को लेकर जीवन जीवन है। इसी को लेकर समाज में गृह का व्यक्तित्व और स्थिति है। जो स्त्रियाँ इसका उचित उपयोग कर सकती हैं वे कौए के साथ भी सुखी हो जाती

हैं; जो इसका उपयोग नहीं कर सकतीं उनके लिए हंस भी तृप्तिकर नहीं हो सकता।

अनुकूल मनःस्थिति

दुनिया में ज्यादातर स्त्री-पुरुष सामान्य मनःस्थिति वाले होते हैं। न एक दम ऊँचे, न एक दम नीचे। न पुरुष राक्षस होता है, न स्त्री देवी। दोनों मनुष्य होते हैं, दोनों में गुण भी होते हैं, कमजोरियाँ भी होती हैं। बहुत कम पति ऐसे होंगे जो विवाह के बाद एक बार अपनी पत्नियों की ओर एक दम आकर्षित न हों। मामूली तौर पर पति भी पत्नी का हार्दिक प्रेम पाने को उतना ही विकल होता है जितना पत्नी अपने पति का प्रेम पाने को विह्वल होती है। परम्परा ने विवाह-विधि को एक विलक्षण रहस्य से भर दिया है। इसलिए जब दो नये प्राणी एक दूसरे का हाथ पकड़कर देवता एवं अग्नि के सम्मुख वफ़ादार रहने की प्रतिज्ञा करते हैं तो वह प्रतिज्ञा चाहे कितनी ही रटी हुई हो, हृदय में एक नवीन भाव की अनुभूति, कम से कम एक बार, होती अवश्य है! इस अनुभूति में दो शरीर, दो प्राण एक हो जाते हैं: एक विचित्र सिहर से शरीर कम्पित हो उठता है। दोनों दोनों के निकट आने को उत्सुक होते हैं, दोनों दोनों को अपनाना चाहते हैं, समझना चाहते हैं। और अनुभव करते हैं कि अब तक चाहे जितनी स्वच्छन्दता जीवन में रही हो पर अब एक नई ज़िम्मेदारी उन पर आ गई है।

भावना का लाभ उठा लो

तुम्हारा कर्तव्य है कि तुम इस भावना का उचित लाभ उठा लो। अपना हिस्सा वफ़ादारी, ईमानदारी और कुशलता के साथ पूरा करो। जरा-सी मधुरता, कर्त्तव्यशीलता, परिश्रम और सेवा से तुम अपने भविष्य को सुखमय और सुरक्षित बना सकती हो। कल्पना

करो कि उस नये प्राणी को, जिसे व्याह कर तुम्हारे पति लाये हैं, देखने के लिए उनमें कितनी उत्कण्ठा होगी। यह प्रथम मिलन, प्रायः एक ही दिन में विवाहित जीवन के भविष्य का निर्णय कर देता है। यदि इस घड़ी, जब हृदय के मधुर भार से पलकें झुकी जाती हों और जब जीवन की सतह पर एक स्वप्न तैरता हो, तुमने अपने कौशल से पति पर अच्छी छाप डाल दी तो बेड़ा पार है और अगर इस समय खींचातानी, एक दूसरे से खिँचावट, ग़लत बर्ताव, या बातचीत में कोई ग़लती हो गई तो समझो तुम्हारी ज़िन्दगी पहाड़ हो जायगी। तुम्हारे दिन कठिनाई से बीतेंगे और जो चीज़ फूल होती वह शूल हो जायगी।

इसलिए विवाह के बाद जब तुम पहली बार पति से मिलो तो चेष्टा करो कि वह मिलन एक परम्परा, पर एक रिवाज एक विधि का पालन मात्र बनाकर न रह जाय।

गरम लोहे पर चोट! जब लोहा गरम होता है, उसे मनमाने रूप में मोड लिया जा सकता है। जब तुम्हारे पति तुम्हारे निकट उत्कण्ठित और भिक्षार्थी हैं तब तुम अपने समस्त सद्गुणों की एकत्र छाप उनपर, आसानी से, डाल सकती हो। मैं मानता हूँ, तुम पहली बार उनसे मिल रही हो—उनसे जिनको शायद ही कभी तुमने देखा है, और अगर संयोगवश देख भी लिया है तो उनको जानती तो बिल्कुल नहीं हो। इसलिए तुम्हें अपनी सम्पूर्ण शक्ति का उपयोग उनको अनुकूल और वशीभूत करने के लिए करना चाहिए। यही समय है जब तुम अपना जीवन बना सकती हो, और बिगाड़ भी सकती हो। तुम जानती हो कि बिगाड़ना बनाने से सदैव अधिक सरल होता है।

जो कुछ वे पूछें उनका संकोच के साथ, पर स्पष्ट उत्तर दो।

नम्रता और मधुरता तुम्हारी वाणी में हो, लज्जा चेहरे पर और आँखों में। बातचीत का सिलसिला अपने आप

क्रिया की भाषा में

आरम्भ हो जाता है। कुशल स्त्री कहीं अपने पति का पाँव दबाने लगती है, कभी सिर दबाने बैठ जाती है। इसका मतलब भी गुलामी नहीं, जैसा आजकल की भाषा में कहा और समझा जाता है। जब औरत की ज़बान न खुल रही हो तो इन क्रियाओं द्वारा ही वह मानों बोलती है। इसी प्रकार वह अपने को पति से जोड़ती है। इसी प्रकार वह अपने को, बिन बोले, प्रकट करती है। यह दासता नहीं, उसका टैक्ट—कौशल—है। इस एकान्त में तुम अपनी सेवा वृत्ति, अपनी मधुरभाषिता, अपने शील, अपने मीठे और सेवापरायण स्वभाव का क्रियात्मक परिचय पति को दो। शुरू के आठ-दस दिनों का प्रभाव सम्पूर्ण विवाहित जीवन भर बना रहता है। इन दिनों में तुम्हें अपने पति के ऊपर पूरा ध्यान रखना चाहिए। वे क्या चाहते हैं, क्या खाते-पीते हैं, किन बातों को पसन्द करते हैं, घर में किनको चाहते हैं, उनकी आर्थिक स्थिति क्या है, क्या कठिनाइयाँ उन्हें हैं, किन बातों से सुखी होते हैं किन से दुखी—इन सब की सूक्ष्म और गहरी देख-रेख तुम्हें रखनी चाहिए और अपने काम तथा बातचीत से उनके दिल पर यह छाप बैठा देनी चाहिए कि तुम उनकी स्थिति को, उनकी कठिनाइयों को न केवल समझती हो बल्कि उनमें भाग लेने को भी तैयार हो। उपयुक्त कौशल और बातचीत द्वारा तुम बहुत अधिक सफलता प्राप्त कर सकती हो। जैसे यदि तुम्हें मालूम है कि तुम्हारे पति बहुत पैसे वाले नहीं हैं, या हों तो भी, उनके कोई मूल्यवान उपहार देने पर प्रेम-पूर्वक और अपनेपन के भाव के साथ उनसे कहो—"इसकी क्या ज़रूरत थी, मेरे लिए सर्वोत्तम उपहार आप ही हैं। आप सुखी रहें,

बस मेरे सब हौसले पूरे समझिए।" या—"मैं और कुछ नहीं चाहती केवल आपकी सेवा करके कृतार्थ होना चाहती हूँ।" या—"मैं आपके योग्य नहीं, पर आपके साथ भगवान् ने मुझे बाँध दिया है तब मुझे कृपापूर्वक निबाह लीजिए। आप जिससे सुखी हों, वही आज्ञा मुझे कीजिए। मुझमें बुद्धि नहीं पर आपके सुख के लिए अपने प्राण देने में भी मैं अपने को धन्य मानूँगी।" इन चन्द शब्दों से तुम वह सफलता प्राप्त कर सकती हो जो वर्षों के परिश्रम से दुर्लभ है। इससे पुरुष-हृदय तृप्त और सन्तुष्ट हो जाता है। और तुम उसे अपने प्रेम और सेवा से अँगुलियों पर नचा सकती हो। कम से कम अपने भावी जीवन के मार्ग में जो काँटे हों उन्हें चुनकर अपनी कठिनाइयाँ कम तो कर ही सकती हो।

लुभावनी बातें

एक स्त्री को मैं जानता हूँ। बड़ी भली, यानी वफ़ादार, औरत है। शृंगार-पटार में नहीं रहती; गहने-कपड़ों का भी उसे कुछ ऐसा शौक नहीं। अच्छे खानदान की होकर भी गरीबी में गुजर करने को तैयार। यदि संकुचित अर्थ में कहा जाय तो उसे सच्चरित्रा कहेंगे। कभी किसी पर-पुरुष की तरफ उसने आँखें नहीं उठाईं। रात दिन, अपनी शक्ति से अधिक, घर के काम-काज में लगी रहती है। फिर भी उसे जीने की कला नहीं मालूम है। वह नहीं जानती कि ये जो उड़ने वाले मर्द हैं किस तरह वश में किये जा सकते हैं। फलतः वह खुद भी दुखी है और उसका पति भी दुखी है। दोनों असन्तुष्ट, अतृप्त, खोये हुए। जरा-जरा सी बात में झगड़ा हो जाता है। असल में विवाहित जीवन की सफलता में यद्यपि ईमानदारी का महत्व बहुत है फिर भी

स्वभाव और कौशल का महत्त्व

सबसे ज़रूरी चीज़ है स्वभाव और कौशल। एक चरित्रमती स्त्री की अपेक्षा एक चतुर, मृदु-स्वभाव वाली स्त्री के विवाहित जीवन में सफल होने की अधिक आशा की जा सकती है। परसाल मैंने दो बहिनों की शादी देखी। दोनों साधारण मध्यम श्रेणी के कुटुम्ब की लड़कियाँ थीं। दोनों की शिक्षा-दीक्षा भी मामूली पर प्रायः एक-सी थी। इनमें एक अधिक चरित्रमती थी। इसे 'क' कह लीजिए। दूसरी वैसी न थी—उसे 'ख' कह लीजिए। अब 'क' का जीवन दुःख और रोने से भरा हुआ है। और 'ख' सुखी, पति की प्यारी है— जहाँ जाती है वहीं चार सहेलियाँ बना लेती है। उसे लगता है, दुनिया प्रेम और सुख से भरी हुई है। उसे कभी इकलेपन का अनुभव नहीं होता। जहाँ जाती है वहीं अनेक होकर रहती है। जिन्दगी अच्छी तरह बीत रही है और श्रीमती

श्रीमती 'क' और 'ख'

'क' हैं कि सदा अपने भाग्य का रोना रोती रहती हैं। दुनिया में उनको बाप से शिकायत है, माँ से शिकायत है, सास-ससुर से शिकायत है। ननदें उन्हें नहीं सोहातीं और जेठानियों को देखकर वह मुँह बिचकाती हैं। उनकी शिकायत है कि सगे-सम्बन्धी कोई उनकी परवा नहीं करते; कोई उन्हें नहीं पूछता; किसी का हृदय उनके लिए खुला नहीं है। उन्हें सर्वत्र कठोरता और कटुता दिखाई पड़ती है; कहीं मृदुलता के दर्शन नहीं होते। फलतः वह स्वयं भी कटु हो गई हैं—चिड़चिड़ी, सबके प्रति अविश्वास से भरी। 'दुनिया में कौन किसका है?' मतलब सारी दुनिया उनके लिए दुःख से भरी है, उन्हें सबसे शिकायत ही है। ऐसी स्त्री यदि चरित्रमती हुई तो भी क्या? वह गृहस्थ जीवन के लिए स्पष्ट एक अभिशाप है। वह न स्वयं सुखी होगी; न दुसरों को सुखी करेगी; न खुद हँसेगी, न दूसरों को हँसने देगी। इस चरित्रमती को

लेकर पति क्या करेगा? घर के लोग इसका क्या बनायेंगे? यह जहाँ जायगी वहाँ के वातावरण को दुःख और विषाद से पूर्ण कर देगी।

सफल स्त्रियाँ

मैंने जीवन में इसके कितने ही उदाहरण देखे हैं कि एक चरित्रमती परन्तु स्वभाव से सख्त या छुई-मुई स्त्री की अपेक्षा एक अपेक्षाकृत कम चरित्रमती पर मधुर स्वभाव रखनेवाली और स्थिति तथा कर्तव्य को समझने वाली स्त्री विवाहित जीवन में अधिक सुखी तथा सफल हुई है। तीन ऐसी लड़कियों को मैं जानता हूँ जिनके चरित्र में विवाह के पूर्व कुछ कच्चेपन का प्रमाण मिला; इधर-उधर बहक गईं पर विवाह होने पर वे बड़ी अच्छी और सफल पत्नियाँ निकलीं। इनका स्वभाव मृदुल और रसमय था। वह मृदुलता एक क्षण के लिए स्थान-भ्रष्ट होकर ग़लत मार्ग पर चली गई पर ज्योंही उसे अपने स्थान का पता लग गया और ज्योंही रास्ता मिल गया, वह अमृत बन गई। सूखी, काष्ठवत्, बहुत बनने वाली और कट्टर औरतें विवाहित जीवन में सफलता प्राप्त करने की आशा नहीं कर सकतीं। इसलिए उचित है कि तुम चरित्र के साथ स्वभाव की मृदुता पर भी ज़ोर दो। अगर तुम मीठा बोलती हो, समय पर काम करती हो, ज़रूरत के वक्त सेवा करने का महत्त्व जानती हो तो तुम एक अच्छी पत्नी सिद्ध होगी। जो औरत हँसना और मुस्कराना जानती है दुःख और असफलता का दंश उसके कलेजे में कभी चुभ नहीं सकता। हँसने से बढ़ कर मन की काई काटने वाली दूसरी चीज़ नहीं। जैसे मोती में आब है वैसे ही जीवन में हास्य है। एक बिना रोक-टोक के हृदय से निकली मुक्त हँसी जीवन का बहुत-सा संचित मल एक क्षण में नष्ट कर देती है। इसलिए सच्चरित्र पर स्वभाव की कर्कशा या झगड़ालू स्त्री से,

चरित्र में कुछ कम कट्टर पर मधुर स्वभाव की स्त्री सदा अच्छी जीवन-संगिनी सिद्ध होती है। मैं अपने एक मित्र को जानता हूँ जिनकी स्त्री संकुचित अर्थ में अत्यन्त सच्चरित्र है—धार्मिक विचार की, पूजा-पाठ करने वाली। वह पति के लिए व्रत भी रहेगी। और पति से झगड़े भी करती रहेगी। उसे पतिव्रता होने का अभिमान है पर आश्चर्य और दुःख की बात है कि कभी उसने पति को सुखी करने की चेष्टा न की। हमारे ये मित्र बड़े ही परिश्रमी, दुनिया देखे हुए और शीलवान व्यक्ति हैं। पर बीस-पचीस वर्ष में कभी सुख का एक दिन न बीता। उनका जीवन हाहाकार से भरा है। उनके लिए पत्नी का होना न होना एक जैसा है बल्कि अगर यह औरत न होती तो उनका जीवन कहीं सुखी होता।

सास का आदर

यदि तुम्हारी सास है तो उसे माता मानकर चलो। आजकल बहुत कम घर ऐसे बच गये हैं, जहाँ सास-बहू से बनती हो। अक्सर विवाह होते ही घर के टुकड़े टुकड़े हो जाते हैं। मैं जानता हूँ, इसमें सदा दोष स्त्री के ही संस्कार, मन का, नहीं होता। स्वभाव, सिद्धान्त, परिस्थिति, आवश्यकता सभी इसके निर्णय में भाग लेते हैं। पर जहाँ तक हो सास-ससुर तथा घर के अन्य प्राणियों से अच्छा सम्बन्ध रखने में तुम्हारा लाभ है। अगर ससुराल में जाते ही अपने पति पर तुमने यह आभास डाल दिया कि तुम एक झगड़ालू औरत हो और आते ही तुमने एक समस्या खड़ी कर दी तो घर का भविष्य जो हो, तुम्हारा भविष्य बहुत अच्छा न होगा। एक ऐसी जगह, जहाँ तुम प्रायः अकेली और अपरिचित हो, अपने विरोधियों की संख्या बढ़ा लेना बुद्धिमानी नहीं; मूर्खता है। तुम्हारे पाँव भी नहीं जमे और तुमने एक झगड़ा मोल ले लिया। चाहे न्याय तुम्हारे पक्ष में हो तो भी परिणाम

विपरीत होगा। यह ठीक है कि स्त्री का पति पर एक विशेष अधिकार है और जब तुम्हें व्याह कर तुम्हारे पति लाये हैं तब तुम्हारी मर्यादा और सुविधा का ध्यान भी उन्हें रखना चाहिए पर विवाह का यह मतलब भी नहीं कि तुम्हारा तुम्हारे पति पर सर्वाधिकार हो गया। जैसे वे तुम्हारे पति हैं वैसे ही किसी के बच्चे भी हैं, किसी के भाई भी हैं। उन सबके प्रति उनका कुछ कर्त्तव्य है। क्या उन्हें अपनी माता की अवज्ञा करनी चाहिए? क्या पुत्र का माता के प्रति कोई कर्त्तव्य नहीं है? तुम्हारे लिए उचित है कि तुम उस कर्तव्य-पालन में सहायक बनो, बाधक न बनो। हर औरत अपने अनुभव से जानती है कि अगर उसके माता-पिता के बारे में पति भी कोई आक्षेप-युक्त बात, फिर चाहे वह सच्ची ही क्यों न हो, कह दे तो उसको बहुत बुरा लगता है। मायके की निन्दा सुनकर अविचलित रहनेवाली स्त्री आजतक पैदा नहीं हुई; तब उसे पति के माता-पिता के विषय में क्यों न बहुत सँभालकर बोलना, और बहुत सँभालकर बर्ताव करना चाहिए? याद रखो कि तुम्हारी सास उसी व्यक्ति की माँ हैं जो आज तुम्हारे जीवन का सब कुछ है; जब तुम नहीं थीं तब दुःख में, कठिनाइयों में, आपदाओं और संकटों में उसी माँ ने तुम्हारे पति की सेवा और रक्षा की है; आज जो कुछ वह है उसी माँ के कारण है। तुम्हारे लिए उचित है कि तुम उसके प्रति विनीत और कृतज्ञ भाव रखो। यथा-सम्भव उसकी सेवा करो; उसे अपनी माँ समझ कर चलो। यह भी याद रखो कि तुम भी एक दिन सास होगी। और तुम्हारे साथ भी तुम्हारी बहू का व्यवहार विनीत और शिष्ट न हुआ तो तुम्हें भी दुःख होगा। इसके अलावा छोटे-बड़े सभी कुटुम्बियों के प्रति तुम्हें मर्यादा के अनुकूल व्यवहार करना चाहिए। अपनी

तरफ से कोई ऐसा मौका न देना चाहिए कि विभेद बढ़े। याद रखो प्रेम ही जीवन का अमृत है और जहाँ विभेद है तहाँ प्रेम टिक नहीं सकता।

बेकारी मृत्यु है !

आजकल की बहुएँ प्रायः निठल्ली बैठने को अमीरी और सुख का साधन समझ लेती हैं। वे चाहती हैं कि नौकर घर का सारा काम करें और वे केवल जब-तब निर्देश या आदेश करती रहें। जो स्त्री यह चाहती है वह मानों दूसरों की आँखों से देखना और दूसरों के पाँवों से चलना चाहती है। कभी न भूलो कि आलस्य और निठल्लेपन से बढ़कर जीवन के तन्तुओं को काटने वाली दूसरी चीज नहीं है। यह बड़ा घातक विष है।—ऐसा विष जो देखने में अत्यन्त मनोमोहक और स्वाद में मीठा है पर जो जीवन की शक्ति को चूस लेता है, उसकी धमनियों को सुखा देता है। सदा किसी काम में लगी रहो। अन्यथा किसी दुर्बल घड़ी में तुम्हारा मन तुम्हें दबोच लेगा। किसी असावधानी के क्षण में तुम अपनी मर्यादा और मनोभूमिका से गिर जाओगी। निठल्लेपन में नशा है, परिश्रम में जीवन और शक्ति की अनुभूति है। काम-काजी स्त्री जीवन के अनेक दुःखों से बच जाती है। क्योंकि अगर कोई बात सामने आई भी तो वह उसे भुलाकर अपने काम में लग जाती है। उसे रोने और तिल का ताड़ बनाने की फुर्सत ही नहीं, जब बेकार औरत का मन दुश्चिन्ताओं और बेकार बातों से भरा रहता है और वह जरा-जरा-सी बात को तूल दे-देकर दुखी होती है। ऐसी घड़ियों में, जब वह अपना रोना और हाय-हाय लेकर बेखबर होती है, अक्सर शैतान चुपके-चुपके उसके मन में साधारणतः अज्ञात और गुप्त मार्ग से प्रवेश करता है। और जब उसे होश आता है तब वह इतनी आगे निकल गई होती है कि

लौटना, चाहने पर भी, असम्भव हो जाता है। शुभ और कल्याणकर दिशा में प्रत्यावर्तन की शक्ति नहीं रह जाती। इसलिए तुम भूलकर भी उस बेकारी को आशीर्वाद न समझना जिसका सपना आरामपसन्द औरतें और लड़कियाँ देखती हैं। यह जीवन का घातक विष है; यह जीवन का मरण है।

धैर्य ही सखा है

एक बात और कहना चाहता हूँ। ज्यो-ज्यों दिन बीतते जायँगे जीवन में नई समस्याएँ और नई कठिनाइयाँ पैदा होती जायँगी। इनसे घबड़ाना नहीं चाहिए; धीरज और शान्ति के साथ उनका सामना करने में ही तुम्हारा कल्याण है। कठिनाइयों में जीवन और शक्ति की परीक्षा होती है। अन्धकार में जैसे प्रकाश खिलता है वैसे ही कठिनाइयों की पार्श्व-भूमि पर जीवन चित्रित है। कठिनाइयों में रो देने वाली स्त्री अपना कुछ कल्याण नहीं करती। अभी क्या, आगे तुम माता होगी, तब अनेक झंझटें पैदा होंगी। अधिकांश स्त्रियाँ बच्चों के लिए लालायित रहती हैं। जो औरत यह कहती है कि उसे सन्तान की आकांक्षा नहीं, वह झूठी है या फिर औरत नहीं है। शरीरशास्त्र, मानसशास्त्र, समाजशास्त्र और धर्मशास्त्र सभी के विचार से स्त्रीत्व की परणति मातृत्व में ही है। सम्पूर्ण सृष्टि में प्राणियों का संयोग इसी उद्देश्य से होता है। मैंने अनेक फैशनेबुल आधुनिकाओं को देखा है जो अपने झूठे यौवन की रक्षा के लिए कृत्रिम साधनों का अवलम्बन लेतीं और सन्तति से दूर हैं। पर इनके जीवन में भी एक अतृप्ति भरी है।

जगत् की शक्ति का केन्द्र

या तो उनका स्त्रीत्व विकृत हो गया है या फिर दिल में वे दूसरों के सुन्दर बच्चों को देख कर हाय करती हैं। पर अपने आकर्षण की रक्षा के चस्के में मातृत्व से वंचित हैं। स्त्री का मसला

रूप ही उसके गौरव का चरम विकास है। *इसी रूप में वह जगत् की शक्ति का केन्द्र है। इसी रूप में वह उद्भवकारिणी है। इसी रूप में वह सनातन शक्ति है।* इसलिए मातृत्व की अनुभूति बिना उसका जीवन सूना है। लाखों पढ़ी-लिखी औरतें बच्चा न होने पर इलाज कराते-कराते परेशान हैं; अशिक्षित स्त्रियाँ टोना-टोटका सब कुछ करती हैं। मतलब यह कि सन्तति की आकांक्षा एक प्राकृतिक आकांक्षा है।

पर बच्चों के होते ही गृहस्थ जीवन की कठिनाइयाँ बहुत बढ़ जाती हैं। उनके पालन-पोषण में माँ का बहुत समय निकल जाता है! शरीर भी क्षीण पड़ता जाता है। बीमारी तथा एक न एक झंझट लगी ही रहती है। स्वाभाविक है कि तब स्त्री अपने पति की ओर उतना ध्यान नहीं दे पाती जितना पहले देती थी। अक्सर अनुदार पतियों द्वारा इसका गलत अर्थ लगाया जाता है। इसलिए मातृत्व और स्त्रीत्व का यह संधिकाल भी तुम्हारे लिए एक खतरे का समय है। यदि तुम अपने कौशल से अपने पति का अनुराग बनाये रख सकी तो तुम्हारी नाव पार लग जायगी। ऐसा न होने दो कि बच्चे तुम्हारे और तुम्हारे पति के बीच खाई बन जायँ। उन्हें दोनों के प्रेम की परणति का प्रतीक बनाओ; वे वह बिन्दु बनें जहाँ आकर दोनों के जीवन मिलते हैं।

प्यारी बहिनो और बेटियो! अगर तुम इन बातों पर अमल करोगी और कौशल से काम लोगी तो तुम्हारे जीवन पर प्रेम की शीतल चाँदनी छा जायगी। तुम्हें प्रेम का नशा न चाहिए, प्रेम का अमृतत्व चाहिए। प्यास और छलना का जीवन छोड़ दो और तृप्ति तथा विश्वास के साथ जीवन में प्रवेश करो। तुम्हारा मंगल हो। दिशाएँ तुम्हारी दिव्य ज्योति से प्रकाशित हों; समाज तुम्हारे वरदान से गौरवान्वित हो; संसार तुम्हारे स्नेह-सन्देश से मुखरित हो। हे मंगलमयी! तुम्हारी जय हो।

: ९ :

वसन्त की कलियाँ

प्रिय कान्ता,

कई पत्र मैं तुम्हें लिख चुका हूँ और उनमें गृहस्थ-जीवन क अनेक चित्र तुम्हें मिलेंगे। बहुत-सी ऐसी बातें भी मिलेंगी जिनका अनुसरण करके विवाहित जीवन सुखी बनाया जा सकता है। इस पत्र में मैं सिलसिले से कुछ जरूरी बातें बताना चाहता हूँ।

यौवन का वसन्त

हिन्दू विवाह केवल भोग-विलास और निजी सुख के लिए नहीं है। यह ठीक है कि यौवन-काल आकांक्षाओं और अभिलाषाओं से पूर्ण होता है। मन में तरंगें आती हैं। हृदय सावन के बादलों-सा रस से भरा-भरा और विनीत हो उठता है। उसमें अनेक चित्र बनते बिगड़ते हैं। उसमें उमंगें उठती हैं। मन एक साथी ढूँढ़ता है। किसी के सपने आते हैं। कुछ अभाव मालूम पड़ता है और उस अभाव की पूर्ति के लिए अनेक अस्पष्ट भावनाएँ आती और जाती हैं। एक अजब-सी बेचैनी होती है। शरीर में अनेक परिवर्तन होते हैं।

इन आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए एक समाज और धर्म से अनुमोदित साथी चाहिए। विवाह से इस प्रकार का साथी मिलता है। पर क्या केवल इन पारस्परिक अभिलाषाओं की पूर्ति ही विवाह का उद्देश्य है? नहीं, स्त्री मानव जाति की माता है। उसकी धारा को सूखने न देने के लिए ही मुख्यतः उसका निर्माण हुआ है। समाज को उत्तम सन्तति का दान करना

उसका धर्म है। इसीलिए हिन्दू धर्म में विवाह एक धार्मिक और सामाजिक महत्व का कार्य है। विवाह के पूर्व प्रत्येक कन्या को अपने शरीर और मन का समुचित निर्माण कर लेना चाहिए।

जो लड़की सुखी विवाहित जीवन बिताते हुए पति, कुटुम्ब, देश और समाज के प्रति अपने कर्त्तव्यों का पालन करना चाहती है, उसे इन बातों को समझना चाहिए।

वही तुम्हारा घर है

सबसे पहले पतिगृह में जाते ही उसे यों अपनाना चाहिए कि मानो युग-युग से वही उसका घर है। माता-पिता के घर को सदा के लिए छोड़कर एक नये घर में जाने पर शंका, भय, अस्पष्टता, और संकोच का होना स्वाभाविक है; दुःख भी होता है। पर जब तुम जानती हो, रहना वहाँ है, जीवन वहाँ व्यतीत करना है, घर भी वही है तब बुद्धिमानी यही है कि लड़की अपने दिल को वश में रख कर जितनी जल्द हो सके अपने काम में लग जाये। अक्सर विवाह के बाद के कुछ दिनों में ही बहुओं की क़िस्मत का फैसला हो जाता है। इसलिए इन दिनों को रोने-धोने में बिता देना मूर्खता है। समाज में सभी तरह के आदमी हैं। भयंकर और खराब स्वभाव की सासें हैं जिन्हें जान देकर भी कोई सन्तुष्ट नहीं कर सकता और जो नारी की जड़ता और अनुदारता की प्रतीक होती हैं। और ऐसे पति हैं जो ऊँट की भाँति कब कौन-सी करवट लेंगे इसका पता नहीं। पर ऐसा कम होता है। ज्यादातर सासें ऐसी हैं जो अपनी बहुओं को गोद में ले लेने को उत्कण्ठित होती हैं। ज्यादातर पति अपनी पत्नियों के प्रति एक आकर्षण अनुभव करते हैं। योग्य वधू उनकी इस शुभाकांक्षा का उचित उपयोग करती है। और उनसे अपना लक्ष्य-साधन कर लेती है।

घर में जाते ही लड़की को ध्यान से वहाँ की परिस्थिति देखनी चाहिए। घर में कौन वृद्ध जन हैं, किसकी बात सबसे ज्यादा चलती है, यह सब समझना-बूझना चाहिए। सबसे पहले उसी का हृदय जीतना चाहिए जिसका प्रभाव कुटुम्ब में सबसे अधिक हो। सेवा, नम्रता, मधुर बोल द्वारा तुम यह कर सकती हो। जैसे सास हैं तो उनके प्रति सदा सम्मान का भाव रखना और उसे प्रकट करना, उसके पाँव दबाना, उनका ख्याल रखना—मतलब इस तरह आचरण करना कि वे तुम्हें अपनी बेटी समझें। उचित समय देख नम्रता-पूर्वक कह भी सकती हो—"माँ ! मैं तो आप की तुच्छ बेटी हूँ। कुछ जानती नहीं पर जब आपने कृपापूर्वक मुझे अपने चरणों ले लिया है तो मुझे अपने स्नेह से कभी वञ्चित न करना। मैं अज्ञान और मूर्ख हूँ, कोई ग़लती हो जाय तो माँ की तरह मुझे बतायें और क्षमा कर दें।" ऐसी बातें यदि ईमानदारी से कही जायँ तो इनका बड़ा असर पड़ता है। सास एक अद्‌भुत हर्ष का अनुभव करती है और समझती है कि बहू अच्छे घर की बेटी है और अच्छे माँ-बाप के बीच पली है और यह भी कि इससे निभ जायेगी—और यह घर की शोभा और गौरव बढ़ायेगी।

सबसे निभा लो

इसी प्रकार देखना चाहिए कि पति का स्वभाव कैसा है, किन बातों में उनकी ज्यादा रुचि है। जिन बातों से उन्हें प्रसन्नता हो उन्हें करने की कोशिश करनी चाहिए। प्रतिदिन उठकर पति के चरण छूकर या हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम करना चाहिए और रात को सोने के समय हाथ-पाँव दबाकर, पान-इलायची इत्यादि देकर उन्हें सब प्रकार सन्तुष्ट करना चाहिए। प्रत्येक दिन का आरम्भ और अन्त शुभ होना चाहिए।

देवरों और ननदों से यों बोलना चाहिए मानों तुम्हारे छोटे भाई-बहिन हों। यों बोलो मानो शर्बत घोल रही हो। उनको पास बैठाकर उनकी बातों में दिलचस्पी लो। जब वे तुम्हारे पास आयें, प्रेम की मीठी बातों से उन्हें खुश कर दो। उन्हें अपनाकर आश्वस्त कर दोगी तो तुम्हारा मार्ग सुगम हो जायगा।

अगर घर में जेठानियाँ हैं तो उनका सम्मान करो। उन्हें दीदी कहो, उनसे पूछकर, उनकी आज्ञा और सलाह लेकर घर-गृहस्थी के काम करो। उन्हें यह अनुभव न होने दो कि तुम उनके अधिकार में हस्तक्षेप करना चाहती हो। उनसे मिलकर, उनकी बनकर रहो। उनके बच्चों को प्यार करो; उनकी सेवा करो। जैसे कोई बच्चा मचल रहा है, उसे माँ के सामने उठा लिया, प्यार किया और चुप कर दिया, किसी को कपड़े पहिना दिये, किसी को नहला दिया, किसी को कंघी-चोटी कर दी। जब उनकी माताएँ देखेंगी कि तुम उनके बच्चों को चाहती हो तो तुम्हारी प्रशंसा करेंगी और तुम्हें भी चाहने लगेंगी।

अनेक प्रकार की माँगें

याद रक्खो कि प्रारंभिक विवाहित जीवन में एक वधू से इतने कार्यों की आशा की जाती है जिनकी पूर्ति प्रायः असंभव है पर चतुर और योग्य वधू वह है जो जीतोड़ परिश्रम करके सबको सन्तुष्ट और अपने पक्ष में कर लेती है। सास चाहती है कि बहू मेरी बेटियों (जो विवाहित होकर चली गई हैं) का अभाव दूर कर दे। मेरी सेवा करे। मेरे घर को अपना घर समझे। पति चाहते हैं कि तुम उनके कार्यों में दिलचस्पी लो; उनकी जीवन-सखी बन जाओ; सुख-दुःख में वे तुम पर भरोसा करें; उनके प्रति प्रेम से तुम्हारा हृदय भरा हो; तुम उन्हें

अपना समझो। जेठानियाँ तुम्हें छोटी बहिन के रूप में चाहती हैं। देवरानियाँ चाहती हैं, तुम उनके हृदय में प्रवेश करो—उन्हें अपना लो। वे तुम्हारे प्रेम की भूखी हैं। मतलब जितने लोग, उतनी तरह की माँगें। तुम्हें सब पर ध्यान रखना पड़ेगा। इसके अलावा घर-गृहस्थी का सञ्चालन भी सुघड़तापूर्वक करना होगा।

अस्त-व्यस्त चीज़ें देखो तो उनको ठीक स्थान पर रख दो। पति के कमरे को व्यवस्था से रखो। घर को साफ़-सुथरा रखो। कुछ ऐसा मानो तुम्हारे स्पर्श से वह चमक उठा है। तुम्हारा व्यक्तित्व गृह के प्रत्येक भाग में प्रकाशित—व्यक्त—होना चाहिए जिससे अनुभव हो कि यह *तुम्हारा* गृह है। प्रत्येक वस्तु पर तुम्हारी छाप होनी चाहिए। गृह के अणु-अणु में तुम व्यक्त हो—तुम गृहमयी हो जाओ। नौकर और मज़दूरनियों से कृपा-पूर्ण और मधुर व्यवहार करो। अक्सर नौकर ही घर को नष्ट करने वाले होते हैं और एक की चार लगाते हैं। मिठास के साथ तुम उनसे बहुत काम ले सकती हो और वे तुम्हारा अच्छा विज्ञापन करेंगे। उनके प्रसन्न रहने से तुम्हारा काम भी सरल हो जायगा।

: १० :

पति का हृदय जीतने के उपाय

प्रिय कान्ता,

पिछले पत्र में मैं यह बता चुका हूँ कि विवाह के बाद स्त्री को किन बातों का ध्यान रखना चाहिए। आज मैं यह बताना चाहता हूँ कि पति का हृदय जीतने के उपाय क्या हैं।

पिछले किसी पत्र में कह चुका हूँ कि दुनिया में न सब पुरुष राक्षस होते हैं और न सब स्त्रियाँ देवियाँ ही होती हैं। अधिक संख्या ऐसे स्त्री-पुरुषों की होती है जो सामान्य मनुष्य होते हैं और सामान्य मनुष्य की भाँति आकांक्षाएँ रखते हैं, सामान्य मनुष्य की भाँति ही उनमें दोष-गुण होते हैं। इसलिए अधिकांश पति ऐसे होते हैं जिनके हृदय प्रयत्न करके जीते जा सकते हैं! उनके हृदय में भी प्रेम और सहानुभूति होती है; उनके हृदय में भी जीवन का उत्साह होता है। उनमें नारी के प्रति एक सहज आकर्षण होता है। वे भी एक रसमय हृदय लिये आते हैं—प्यार करने और प्यार किये जाने की आकांक्षा लिये।

ज्यादातर लड़कियाँ विवाह के समय घबड़ाई हुई-सी दिखाई देती हैं। दुःख और रोदन के थकान से भरी हुई, कभी बहुत

आशङ्का और भय से विकम्पित लड़की

कहने पर दो कौर मुँह में डाला, कभी नहीं; जो दिन बीत गये हैं उनका बार-बार स्मरण करती हुई, जो आने वाला है उसके प्रति, अनिश्चित होने के कारण, भय और शङ्का से भरी हुई। दिल धड़क रहा है, फिर भी एक सुप्त-सी कामना की गूँज मन में है; मुँह पर उदासीनता दिखाने

की चेष्टा है फिर भी भाव उधर ही उड़े जाते हैं; अन्तर में रस की बूँदों की रिमझिम वर्षा होती है। उत्कण्ठा से रोम-रोम पुलकित है। अजीब-सा यह समय लड़की के जीवन में आता है।

पर इसमें घबड़ाने की कोई बात नहीं है। घबड़ाती वे लड़कियाँ हैं जिन्होंने अपने भावी जीवन के विषय में कभी न सोचा है, न कभी उसके किए किसी तरह की तैयारी की है। यदि तुम पहले से अपने को तैयार रखोगी तो आत्म-विश्वास-पू ˆक बिना किसी भय और आशङ्का के, जीवन के मार्ग में आगे बढ़ सकोगी।

इस तैयारी के लिए, जिससे लड़की पति का हृदय जीत सकती है, सबसे पहली बात यह है कि वह अपने को खूब स्वस्थ रखे। जो लड़की टूटा हुआ और जर्जर स्वास्थ्य

स्वास्थ्य का महत्व

लेकर ससुराल जाती है वह, लाख गुणवती होकर भी और पति के उदार होने पर भी, सुखी होने की आशा नहीं कर सकती। उसने तो दुःख का सौदा पहले से ही कर लिया है! उसके पास वे आवश्यक साधन भी नहीं हैं जिनके बिना जीवन की मंजिल सूनी और अनाकर्षक है। उसका जीवन रोते बीतेगा, वह स्वयं रोयेगी और दूसरों को रुलायेगी। पति कितना ही उदार हो, कितनी ही सहानुभूति के साथ पत्नी को देखे पर याद रखने की बात है कि यह दोनों के जीवन का वसन्तकाल है। आज जब यौवन दोनों के हृदय के दरवाज़े पर खटखटा रहा है, तब उदासीनता से क्या फल निकलेगा? ऊसर और अनुत्पादक भूमि में कौन मूर्ख किसान बीज बोयेगा? इसलिए विवाह-योग्य प्रत्येक लड़की को सबसे पहले अपने स्वास्थ्य पर ध्यान देना चाहिए। यौवन और स्वास्थ्य ये दो जीवन की सर्वोत्तम देन हैं। इन्हीं को लेकर जीवन है—

जीवन का आनन्द है। अस्वस्थ शरीर प्राणहीन जैसा है। कौन उसकी ओर आकर्षित होगा। जब पति का मन यौवन के सपनों में झूलता हो, जब वह उमंगों से भरा हो, भावी जीवन की योजनाएँ उसके मानस-क्षितिज पर उठ रही हों तब रुग्णा पत्नी प्राप्त करके जीवन की साधों और उमंगों का नाश होने पर किसे खीझ न होगी ?

विवाहित जीवन केवल सद्‌गुणों और सदिच्छाओं के आधार पर चल नहीं सकता। सद्‌गुणों का आचरण करने के लिए यदि स्वस्थ शरीर नहीं है तो वे सद्‌गुण क्या काम देंगे ? फिर अस्वस्थ शरीर अस्वस्थ मन की पूर्व भूमिका है। एक बात और ध्यान देने की यह है कि विवाहित जीवन में शरीर और मन दोनों का मधुर संयोग होता है। यौवन में शारीरिक आकर्षण का भी कुछ तात्पर्य और प्राकृतिक अभिप्राय है। यह व्यर्थ नहीं है। सब स्त्रियाँ सुन्दरी नहीं होतीं पर स्वास्थ्य और प्राकृतिक मोहनी को क़ायम रखकर सब अपने को पति की दृष्टि में आकर्षक बना सकती हैं। सब प्रयत्न करके अन्तर में छिपे सौन्दर्य का विकास कर सकती हैं।

इसलिए पहली बात स्वस्थ शरीर और यौवन के प्राकृतिक आकर्षण की रक्षा है। शरीर और यौवन के इस आकर्षण को कृत्रिम और प्राकृतिक उपायों से देर तक क़ायम रखा जा सकता है। हलका भोजन, फलों का पर्याप्त मात्रा में सेवन, खुली स्वच्छ वायु में टहलना संयमपूर्ण जीवन स्त्री के शरीर-सौन्दर्य को देर तक क़ायम रखने में सहायक हैं। सुबह उठकर गरम पानी में नींबू का रस निचोड़ कर उसके छींटे मुँह पर देने से भी बड़ा लाभ होता है। लड़कियों को यह कभी न भूलना चाहिए कि प्रत्येक पति स्त्री में कुछ न कुछ सौन्दर्य अवश्य चाहता है। फिर

जो कुछ तुमको मिला है उसकी रक्षा करना और उसे बढ़ाना तो तुम्हारा कर्तव्य है ही। पूर्वकाल की स्त्री इसे आज की स्त्री से अधिक जानती थी। इसीलिए उसका गृहजीवन आज से कहीं सुखी था।

प्रेम का कौशल

दूसरी बात है प्रेम और प्रेम-कौशल की। ससुराल जाने के बाद लड़की को सबसे पहले पति को प्रसन्न रखने की कला का अभ्यास करना चाहिए। यह कुछ मुश्किल काम नहीं है। जब पति के पास जाओ, अनुराग से हृदय भरा हो। तुम्हारी प्रत्येक बात में उनके प्रति अपनापन का भाव हो। अवसर मिलते ही तुम्हें उनके चरणों में सिर देकर कहना चाहिए कि 'मैं आपके पास संयोग-वश आ गई; मैं अयोग्य हूँ, आप समर्थ हैं। आप मुझे सँभाल लेंगे, आश्रय देंगे तो सम्भव है मैं आपके योग्य बन सकूँ। पर जैसी भी हूँ, आपकी हूँ। आपकी रहना चाहती हूँ, आशा है, आप अपने प्रेम और आश्रय से मुझे वञ्चित न करेंगे।' इस प्रकार की मधुर बातों का एक बड़ा लाभ यह है कि पुरुष का अभिमानी हृदय तृप्त हो जाता है और वह समझता है कि मेरी पत्नी पूर्णतः मेरी है। स्त्री को ऐसी बातों का खूब लाभ उठाना चाहिए। पुरुष के अहङ्कार को चोट न पहुँचे और उलटे वह तृप्त रहे, जो स्त्री इसे जानती और तदनुकूल आचरण करती है वह बहुतेरी कठिनाइयों को अपने-आप हल कर लेती है।

अनुकूल जीवन बनाने की चेष्टा

इस सम्बन्ध में एक बात और कहूँगा। जिस लड़की का विवाह हो गया है उसे सदा चेष्टा करनी चाहिए कि उसका जीवन अधिकाधिक पति के जीवन के अनुकूल हो। मान लो, पति देवता तुम्हें पढ़ाना चाहते हैं या कोई कला या संगीत या वाद्य की शिक्षा

देना चाहते हैं, या वे तुम्हें ऐसी बनाना चाहते हैं कि तुम उनके जीवन-कार्य में सहायक बनो तो तुम्हें चाहिए कि सच्चाई के साथ वैसा करने का प्रयत्न करो। बहुतेरी स्त्रियों का जीवन काठ-जैसा होता है। वे जो सीख चुकी हैं, जो बन चुकी हैं, उसके आगे न जायँगी। अपने जीवन को पति के जीवन के लिए जितना ही अनिवार्य, आवश्यक और उपयोगी बनाओगी उतना ही तुम पति के हृदय पर राज कर सकोगी। कई लड़कियाँ या स्त्रियाँ इस सम्बन्ध में जड़ होती हैं। उनमें न उमङ्ग होती है, न ईमानदारी। मैं एक स्त्री को जानता हूँ जिसके पति एक अच्छे नेता और जन-सेवक थे। उनकी बड़ी आकांक्षा थी कि पत्नी प्रयत्नपूर्वक थोड़ा-थोड़ा ज्ञान राजनीति तथा सार्वजनिक विषयों के सम्बन्ध में प्राप्त कर ले। दस साल तक वे लगातार चेष्टा करते रहे पर पत्नी वही घरेलू पचड़ों में अपने को लगाये रही और उस ओर कुछ उन्नति न कर सकी। उन्होंने उसका साहित्यिक ज्ञान बढ़ाने तथा संगीत इत्यादि सिखाने की भी चेष्टा की, जिससे जीवन में सरसता बढे पर ऊसर भूमि की भाँति वह स्त्री अनुत्पादक निकली। वह यही कहती रहती कि मैं जैसी हूँ वैसी हूँ। आप चाहें तो वैसी किसी दूसरी स्त्री से विवाह कर लें। वह काठ की तरह बनी रही। उसमें लचीलापन था ही नहीं। फलतः दोनों का जीवन दुःखी है। इसके विरुद्ध एक मामूली योग्यता की लड़की है। चार-पाँच साल पहले ही इसका व्याह हुआ। बेचारी के माँ-बाप इस योग्य न थे कि कुछ अच्छी शिक्षा दे पाते। माँ मर गई थी। घर में कोई न था। लोग कहते थे—कैसे यह पार लगेगी? पर जब उसका विवाह हुआ, उसने अपने को ऐसा सँभाला और पाँच वर्षों में इतना सीखा कि आज गृह-

लक्ष्मी बन गई है और पति के दिल की रानी है। जो चाहती है, कर सकती है। उसको सदा यह उमंग रहती है कि मैं कैसे ऐसी बनूँ कि पति के कुछ काम आऊँ।

मैं यह नहीं कहता कि लड़कियाँ अपने व्यक्तित्व को एकदम भुला दें, न मेरा यही मतलब है कि पति की हर भली-बुरी बात, हर सनक का अनुकरण स्त्री को करना ही चाहिए। मेरा आशय इतना ही है कि जिस बात की ओर उनकी विशेष रुचि हो अगर उसमें कोई बुराई नहीं तो पूरी तरह उसके लिए चेष्टा करनी चाहिए।

जीवन में दुःख और विपत्ति सभी पर आती है। कोई ऐसा भाग्यवान नहीं है जिसके जीवन में अँधेरा न आवे, जिस पर सदा सम्पत्ति का अनुग्रह हो और विपत्ति

कष्ट और दुःख में

जिसको छू न सके। अगर पति कभी बीमार पड़ जाय या दुखी हो या किसी विपत्ति में पड़ गया हो तो ऐसे समय विशेष रूप से उसके प्रति बड़ा मधुर और अपनेपन का व्यवहार करना चाहिए। बीमार हैं तो उनकी सेवा, देखभाल वैसे ही करनी चाहिए जैसे माता बच्चे की करती है। उनको अनुभव हो कि इस समय उन्हीं में तुम केन्द्रित हो, खाना पीना और सब काम इस समय कोई महत्त्व नहीं रखते। इस कष्ट के समय की हुई प्रेमपूर्ण सेवा साधारण समय की चौगुनी सेवा से भी अधिक मूल्यवान और प्रभाव-शालिनी होती है। इसी तरह यदि उनका काम छूट गया है या आर्थिक विपत्ति आ गई है तो तुम्हें उन्हें मधुरवाणी में सान्त्वना देनी चाहिए—'छिः! तुम दुखी क्यों हो? दिल छोटा मत करो। दुःख-सुख तो आते-जाते रहते हैं। तुम रहोगे तो बहुतेरा सुख देखने को मिलेगा।' इसके साथ तुम्हें शक्ति भर खर्च में कमी करनी चाहिए। मतलब, घर-गृहस्थी में कुछ न कुछ लगा

रहता है। जब तुम्हारे पति चिन्तित हों, दुखी हों तो तुम्हें उनके प्रति अपने हृदय का प्रेम प्रकाशित कर उनको सान्त्वना देनी चाहिए। ऐसी सान्त्वना पति के हृदय पर गहरा असर करती है। वह सोचते हैं कि तुम उनके सुख-दुःख को समझ सकती हो और उसमें भाग भी लेने को तैयार हो।

तीसरी बात यह कि तुम अपने व्यवहार से या बात से कभी पति का अपमान न करो। बहुत-सी स्त्रियाँ बात-बात में पति की हँसी उड़ाया करती हैं। व्यंग भी कर देती हैं। पर कभी-कभी ये व्यंग ऐसे चुभते हैं कि जीवन को छलनी कर देते हैं। रस वहाँ ठहरने नहीं पाता। जो आता है, चू पड़ता है। स्त्री को पति की रुचि की प्रशंसा करनी चाहिए और उसके प्रति कृतज्ञता का भाव व्यक्त करते रहना चाहिए। विशेषतः दूसरों के सामने कभी कोई ऐसी बात मुँह से न निकालनी चाहिए जिसको पति के दिल में चुभने की आशङ्का हो। बहुत-सी स्त्रियाँ पति के कुछ कहने पर लाल आँखों से देखती हैं, झनझना कर काम करती हैं; बर्तन क्रोध के मारे खड़खड़ाते हैं, चीजें धीरे से जमीन पर नहीं रखी जातीं, बरबस गिरकर आवाज़ करती हैं। ये स्त्री के लिए बहुत बुरी बातें हैं। जो स्त्री ऐसा करती है वह अपने पाँव में कुल्हाड़ी मारती है। जो स्त्री अपने व्यवहार में पति के प्रति किसी प्रकार की उपेक्षा दिखाती है वह कभी सुखी न हो सकेगी क्योंकि वह सहयोग नहीं विभेद के पथ पर चल रही है। स्त्री-धर्म बड़ा कठिन है। योग्य गृहिणी ज़हर पी जाती है और अमृत का दान पति और कुटुम्बियों को करती है।

परिश्रम करने का यह मतलब नहीं कि तुम दासी हो या दासी की तरह काम करो। यदि ऐसा है तो समझ लो कि तुम्हारे मन में नरक की दुनिया बस चुकी है और लाख सिर पट-

कने पर भी तुम उसे स्वर्ग न बना सकोगी। श्रम करना असली बात नहीं है; ठीक दिशा में और ठीक मनःस्थिति में काम करना असली चीज़ है।

वही काम अपने को दासी समझ कर करने की जगह अगर स्वामिनी और गृहलक्ष्मी के रूप में करती हो तो न केवल मन में आनन्द का अनुभव करोगी बल्कि इतने परिश्रम का भी तुम्हारे शरीर पर कोई बुरा प्रभाव न होगा। तब तुम समझोगी घर मेरा है, काम मेरा है, तब उसमें तुम्हारा मन हलका रहेगा;—हृदय आनन्द से भरा, शरीर में जवानी छलकती हुई मानों जितना ही काम करती हो थकावट उतनी ही दूर भागती है। काम तो करना ही है पर काम करते हुए विवशता की अनुभूति करना मानों नरक की आग में जलना है।

याद रखो, स्त्री प्रेम की देवी है। सेवा की मूर्ति है। पारिजात वृक्ष की भाँति वह जीवन के सम्पूर्ण कुसुम एक-एक करके पति के चरणों में चढ़ा देती है। देना और देना—यही उसकी प्रकृति है। इसमें ही उसके जीवन की सार्थकता है; इसी में उसकी परणति है। पुरुष तो अहंकारी है। लेने में, अधिकार में तृप्ति अनुभव करने वाला। नारी उसे अपने हृदय के मधुर गन्ध से दिव्यता प्रदान करती है और सब कुछ निछावर करके स्वामिनी बन जाती है। यह परम-रिक्ता ही, परमपूर्णा अन्नपूर्णा है।

बहुत से लोग नारी की इस महान् भूमिका को न समझकर ही उसे दासी की संज्ञा देते हैं। जीवन-विकास की उच्च अवस्था में व्यक्ति सदैव समर्पित, सब कुछ देकर या अधिक से अधिक देकर जीनेवाला होता है। तपस्या ही उसकी शक्ति और त्याग ही उसका अधिकार होता है। नारी ने सभ्यता की यात्रा में यही महत्वपूर्ण सन्देश दिया है।

: ११ :

दिल की दुनिया बनाम गृहस्थ की दुनिया

चि० कान्ता,

गृहस्थी के विषय में पिछले पत्रों में मैं बहुत सी बातें तुम्हें लिख चुका हूँ। फिर भी न जाने कितनी बातें लिखने को रह गई हैं। इस पत्र में एक बात की ओर तुम्हारा ध्यान दिलाना चाहता हूँ।

दुनिया में सुख-दुख सभी को भोगने पड़ते हैं। चाहे किसी स्थिति और मर्यादा का आदमी हो यदि वह केवल सुख चाहे तो उसका भ्रम है। यह ठीक है कि बाह्य सुविधाओं, आर्थिक अवस्था, शारीरिक आरोग्य इत्यादि पर भी सुखी जीवन की उठान निर्भर है पर, एक सीमा तक, सुख-दुःख अपने हाथ की बात है। जो प्राणी सदा असम्भव कल्पनाएँ करते रहते हैं, सपनों की दुनिया में विचरते हैं वे सदा चिन्तित और दुखी रहते हैं। यह स्वाभाविक है कि उनकी कल्पनाएँ और अभिलाषाएँ पूरी न हों, और सपनों का संसार सपना ही रह जाय। यह सदा याद रखना चाहिए कि मनुष्य का सिर आकाश में रहता है पर पाँव ज़मीन पर होते हैं। इसका मतलब यही है कि यथार्थ की दृढ़ भूमि पर ही आदर्श या कल्पनाएँ खड़ी की जा सकती हैं।

दुनिया में सुख केवल उस आदमी को मिलता है जो हर स्थिति में प्रसन्न रहना जानता है। यह स्वभाव की बात है। तुम देखोगी कि बहुतेरे आदमी ग़रीबी में, कष्टपूर्ण स्थिति

सदा प्रसन्न रहो

में, भी मस्त रहते हैं, जब दूसरे सदा अपने

कष्टों और अभावों का रोना रोते रहते हैं। दुःख में, सुख में, अन्धकार में, प्रकाश में जो कुछ मिला है उस पर सन्तुष्ट रहने वाला ही सुखी हो सकता है। इसका मतलब अकर्मण्यता नहीं है। मैं यह नहीं कहता कि जिस स्थिति में तुम हो उसे और अच्छा बनाने की चेष्टा या कामना न करो। मेरा कहना इतना ही है कि शक्ति भर प्रयत्न करने के बाद भी जो नहीं मिला उसके लिए रोना व्यर्थ है। जहाँ शान्ति-सन्तोष नहीं है, वहाँ सुख भी नहीं है। वस्तुतः सुख मन की एक वृत्ति है। प्रयत्न से हर हालत में सुखी रहने का अभ्यास किया जा सकता है। योगियों ने जिस अनासक्ति का उपदेश किया है वह बहुत कठिन है पर प्रयत्न करके मनुष्य एक सीमा तक अपनी आसक्ति को कम तो कर ही सकता है।

सब सपने पूरे नहीं होते

आकांक्षाएँ और सपने तो सबके होते हैं। इनका अन्त नहीं है। स्वभावतः तुम्हारे मन में भी न जाने कितनी इच्छाएँ और कल्पनाएँ होंगी। इसी प्रकार जिसके घर तुम जाओगी, उस तुम्हारे भावी पति के मन में भी अनेक कल्पनाएँ और अभिलाषाएँ होंगी। सम्भव है, वह परी-सी पत्नी चाहता हो, जैसा आज-कल के अधिकांश लड़के चाहते हैं और तुम उसके स्वप्नों की पूर्ति न कर सको। इसी प्रकार की और बातें भी कही जा सकती हैं। जो पति-पत्नी इन बातों का ख्याल करके मन ही मन तड़पते रहते हैं वे कभी सुखी नहीं हो सकते। दिल की सम्पूर्ण इच्छाएँ न किसी की पूरी हुई हैं, न होंगी।

फिर घर-गृहस्थी में तो अक्सर ऐसा होता है। वहाँ चार को देखकर चलना पड़ता है; चार का ख्याल करके तब अपने बारे में सोचना पड़ता है। गृहस्थ-जीवन सामाजिक जीवन है, व्यक्तिगत नहीं। इसमें तुम्हें सिर्फ अपनी अभिलाषाओं की पूर्ति की चिन्ता

नहीं करनी है; सास-ससुर, जेठानियों-देवरानियों, पति और घर के बच्चों—सभी को देखना है, सभी को सँभालना है।

फिर स्त्री का जीवन तो भोग की अपेक्षा त्याग का ही जीवन अधिक है। तुमको तो सफल गृहिणी बनने के लिए प्रसन्नता-पूर्वक अपनी अनेक इच्छाओं का दमन करना होगा।

त्याग का जीवन

जब तुम्हारा दिल रो रहा होगा तब दूसरों के सुख के लिए तुम्हे हँसना पड़ेगा। जब तुम विश्राम की बात सोचती होगी तब काम और बढ़ जायगा। जब तुम कहीं जाने की योजना बना रही होगी, बच्चे बीमार पड़ जायँगे। मतलब, एक न एक चिन्ता और झंझट लगी रहेगी। समाज का वर्तमान गठन ही कुछ ऐसा है कि इसमें स्त्री को अधिक कष्ट सहना, अधिक त्याग करना पड़ता है। पर इसी कष्ट से नारी पवित्र है और इसी त्याग से वह महिमामयी है। मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि वर्तमान समाज में जो विषमता है वह अच्छी है, या नारी के कष्टों में जो कमी की जा सकती है, न की जाय या उसे अधिकार और सुविधाएँ न प्रदान की जायँ। वह सब तो होना ही चाहिए पर उनके साथ भी जो मैंने कहा है वह सदा सत्य बना रहेगा।

इसलिए पहली बात तो मैं तुमसे यह कहूँगा कि अपने हृदय को नियन्त्रित करके रखो; व्यर्थ की और कभी पूर्ण न होने वाली आकांक्षाओं को हृदय में न आने दो, ऐसे सपनों में मत उड़ो जिनकी पूर्ति की जीवन में कोई आशा नहीं है। जो नहीं है उसकी आशा में जो है उससे हाथ धो बैठना कोई बुद्धिमानी नहीं। अपने मन में निरन्तर बढ़ने वाली अभिलाषाओं के दंश का अनुभव करने से बढ़कर दूसरा दुःख नहीं है। जब चलना ज़मीन पर है तब आसमान में उड़ने की चेष्टा एक प्रकार की

मूर्खता है। जो है, उसे सँभालो, सँवारो, उसका अच्छे से अच्छा उपयोग करो। उसे उन्नत और समृद्ध करो।

इसके लिए दूसरी जरूरी बात यह कि भावनाओं की आँधी में उड़ने की आदत छोड़ दो। बहुत-से आदमी इतने भावप्रवण होते हैं कि बात का बतंगड़ बना लेते हैं।

तुनुकमिजाजी एक रोग है

किसी ने हँसी—मजाक में कुछ कह दिया या व्यंग कर दिया या और बात हो गई तो बैठे हैं और मकड़ी की तरह कोई उसी का ताना-बाना बुनते जा रहे हैं। यह बुरी आदत है। तुनुकमिजाजी एक भयंकर रोग है जिसकी गहरी कीमत गृहस्थ-जीवन में चुकानी पड़ती है। स्त्री को एक साथ ही गम्भीर और सरल होने का अभ्यास करना चाहिए। दुःख और चिन्ता, कष्ट और पीड़ा के प्रसङ्ग को हलकेपन से, हँस कर भूल जाना चाहिए। कटु बातों को भूल जाने की आदत से बढ़कर हितकर बात गृहस्थ-जीवन में दूसरी नहीं है। जो ऐसी बातों को गाँठ बाँध लेती हैं वे खुद तो आग में घुलती ही हैं दूसरों के जीवन पर भी दुर्दिन की बदली की तरह छा जाती हैं।

प्रायः स्त्रियाँ वाचाल होती हैं। शिक्षा और संस्कार की कमी के कारण स्त्रियाँ बातूनी स्त्रियों को अक्सर पसन्द करती हैं। ये औरतें इधर-की-उधर लगाने में पटु होती हैं।

सच्चा मित्र

कोई-कोई तो जबान की इतनी मीठी होती हैं कि उनकी जिह्वा के पीछे छिपे विषैले डंक का पता बिल्कुल नहीं चलता। अज्ञान में, अचेतावस्था में वे डस लेती हैं। देखा, घर में कोई बात हुई, बस तुम्हें भड़काने लगीं। इसलिए सखियों के चुनाव में बहुत कृपण और सावधान होने की आवश्यकता है। यह ठीक है कि सच्चा मित्र संसार की

सर्वोत्तम विभूति है पर यह भी ठीक है कि वह ईश्वर की भाँति ही दुर्लभ है। जो औरत दूसरों की निन्दा करती है उससे सर्पिणी की तरह बचो ; वह असावधानी में तुम्हें डँसेगी और तुम्हारी सोने की गृहस्थी को मिट्टी करके छोड़ेगी। हमारे गृहस्थ जीवन का यह सबसे भयानक पहलू है। बहुतेरी असन्तुष्ट स्त्रियाँ जो स्वर्ग से गिर चुकी हैं, दूसरों का स्वर्ग भी नष्ट करने के फेर में रहती हैं। वे सदा दूसरों पर अयाचित कृपा करती हैं, दूसरों की छानबीन करने में तत्पर रहती हैं। निन्दालु स्त्रियों के बीच में ज्यादा बैठना ही नहीं चाहिए। अपने मन की बातें भी जल्दी किसी से नहीं कह देनी चाहिएँ।

ईर्ष्या और बेकारी

दुनिया में जितने भी दुर्गुण हैं उनमें ईर्ष्या और बेकारी दो अत्यन्त भयंकर दुर्गुण हैं। स्त्रियों में प्रायः ईर्ष्या की मात्रा बहुत होती है। ऐसा अक्सर देखने में आता है कि पति की उदारता को स्त्री न केवल नापसन्द करती है बल्कि उसके प्रति कुभावनाएँ भी रखती है और कहीं घटनावश पति ने किसी स्त्री के प्रति किसी प्रकार की उदारता दिखा दी तब तो पत्नी के लिए प्रायः असह्य हो जाता है। ऐसी भावनाएँ रखकर स्त्रियाँ वस्तुतः अपना ही अपमान करती हैं—यानी मान लेती हैं कि स्त्रियों का भोग-विलास के अतिरिक्त और कुछ उपयोग नहीं है। स्त्रियों को थोड़ा उदार होना चाहिए और बात-बात में शङ्का और सन्देह को दिल में स्थान नहीं देना चाहिए। सन्देह वह नागिन है जिसका काटा मुश्किल से बचता है। फिर एक बार सन्देह हो जाने पर दुनिया भर की बे सिर पैर की बातें सूझती हैं।

बेकारी से बढ़ कर मन और शरीर को खराब करने और घुलाने वाली कोई चीज नहीं है। बेकार प्राणी के मन में तरह-

तरह की निर्मूल कल्पनाएँ आती हैं और अक्सर कुरुचिपूर्ण पुस्तकें पढ़ने, कुरुचिपूर्ण बातें करने और सुनने में उसका वक्त बीतता है। तुमको चाहिए कि सदा किसी न किसी उपयोगी और हितकर काम में लगी रहो। काम-काजी औरत अपने आप अनेक चिन्ताओं से बच जाती है। उसे इतनी फुर्सत ही नहीं मिलती कि वह तिल का ताड़ बनावे। कुछ काम न हो तो घर की चीजों को करीने से रखने में लग जाओ। या बच्चों को बैठाकर उनसे हित की बातें करो; अच्छी कहानियाँ सुनाओ, अच्छी बातें बताओ। कपड़े की काट-छाँट, सीने-पिरोने में भी समय का सदुपयोग हो सकता है। या फिर थोड़ा विश्राम ही कर लो। परिश्रमी और समझदार स्त्री का स्वास्थ्य अच्छा रहता है और उसके स्पर्श से घर चमक उठता है; उसमें एक प्रकाश, एक सौन्दर्य आ जाता है।

जिस काम को करो उसमें रस ले-लेकर, दिलचस्पी के साथ मन लगा कर करो। तब वह थकाने वाला नहीं, आनन्द देने वाला बन जायगा। मुँह लटका कर, कोसते और बड़बड़ाते हुए, कोई काम करने से न करना कहीं अच्छा है।

"मतलब मेरा यह कि विवाहित जीवन संयम और त्याग का जीवन है। यह कठोर वास्तविकताओं का जीवन है। दिल की दुनिया और गृहस्थ की दुनिया में बड़ा अन्तर है। दिल में न जाने तुमने कितने खेल खेले होंगे, न जाने कितनी कल्पनाएँ रच रखी होंगी, न जाने क्या-क्या हौसले होंगे, न जाने क्या-क्या सोच रखा होगा। उसमें न जाने कितने स्वप्न आये और गये होंगे, न जाने कितनी दुनियाएँ बनी और बिगड़ी होंगी। न जाने कितनी उमंगें होंगी। यह समझना छोड़ दो कि यहाँ वे सब पूरे होंगे। हजार में एक इच्छा जिसकी पूरी हो गई वह भाग्यवान् है।

: १२ :

अपने को देखो !

चि० कान्ता,

गृहस्थ-जीवन की समस्याएँ इतनी अधिक और इतने प्रकार की हैं कि चाहे कितना ही लिखता जाऊँ, पूरी न होंगी। मैं काफ़ी लिख चुका हूँ और जितना लिख चुका हूँ, यदि पढ़कर गुनोगी तो वे कम नहीं हैं। तुम चाहो तो उनकी सहायता से ऐसी बन सकती हो कि तुम्हारे स्नेहियों को तुम पर गर्व हो।

कान्ता, बड़ा ही विकट समय यह आया है। इसमें स्त्रियों में नशा पैदा करनेवाली, उनको भटका देनेवाली बातें बहुत कही जा रही हैं। तुम जानती हो, मैं स्त्रियों की स्वतन्त्रता का कितना प्रबल समर्थक हूँ। मैंने खुद इसके लिए कुछ कम कष्ट नहीं उठाया है। परदा मैं नहीं चाहता, विवाह के सम्बन्ध में काफ़ी उदारता को आवश्यक मानता हूँ—इस सीमा तक कि अन्तिम निर्णय लड़की के हाथ में होना चाहिए। शिक्षा और नागरिक अधिकारों के पक्ष में मैंने सदैव लिखा और कहा है और जितना लिखा और कहा है, उससे ज्यादा किया है। मैं उन्हें वे सब अधिकार देने का समर्थक हूँ जो वे माँगती हैं।

फिर भी कुछ लोगों को मेरे विचार अजीब-से लगते हैं। कुछ पुराने; कुछ नये। मैं इससे इन्कार नहीं करता। मेरे लिए कोई चीज़ पुरानी होने से न बुरी है, न नई होने से अनिवार्यतः अच्छी है। सत्य और कल्याण-मार्ग के पथिक के लिए पुराना-नया जैसी कोई चीज़ नहीं है। जो हितकर है वही वाञ्छनीय है।

और मैं मानता हूँ कि जिस नारी ने, स्वेच्छा से, तिल-तिल करके अपना सर्वस्व देवता के ऊपर चढ़ा दिया है; जिसने जीवन में सदा देना ही जाना है; जो दिन हो, रात हो, अन्धकार हो, प्रकाश हो, दुर्दिन हो; सुदिन हो निरन्तर अपने स्नेह की बाती जलाये जीवन के कंटकाकीर्ण मार्ग पर बढ़ी जा रही है; जिसकी आँखें स्नेह राग से रञ्जित हैं, जिसके मुख पर मातृत्व की दिव्य ज्योति है, जिसके अञ्चल की छाया में उसके बच्चे निश्चिन्त हैं; जिसने अपनी करुणा से, अपने प्रेम से, अपनी सेवा से पुरुष का संस्कार किया है, और उसे ममत्व से संस्कृत किया, उसे दया और प्रेम दीक्षा दी वह नारी पुरुष से निश्चय श्रेष्ठ है। समाज में जो ज्ञान है वह पुरुष है; जो संस्कृति है वह नारी है। तब खीझ यह देखकर होती है कि क्यों यह नारी आज लघुता के भाव से श्रीहीन हो रही है। क्यों वह पुरुष से बराबरी का दावा करती है—क्यों नहीं वह अधिकार के साथ अपने गौरव की घोषणा करती कि तुम पुरुष जो भी हो, मैं तुम्हारी माँ हूँ; मैंने तुम्हें जन्म दिया है, तुम्हारा निर्माण किया है!

वह गौरव !

आज तो अत्यन्त शिथिल वाणी में शब्द निकलते हैं। आज पुरुष को नतमस्तक करने वाला मातृत्व का ओज तुम न चाहोगी? अपनी सेवा और मृदुलता से विद्रोही और हिंसक पुरुष को संयत और सभ्य कर लेने के दावे से स्त्री क्यों इन्कार करोगी? वह गौरव जो युग-युग से नारी ने अर्जित किया है, वह महत्व जो उसे मानवता के विकास के इतिहास ने दिया है, वह मूल्य जो जातियों और सभ्यताओं के इतिहासों के पन्नों में उसे बार-बार मिला है आज क्या उसका न होगा?

मैं नारी को सब प्रकार के अधिकार देने की आवाज़ उठाता।

हूँ पर कहूँगा कि इस अधिकार के साथ वह पुरुष का अनुकरण, उसकी नक़ल न करे; वह अपनी ओर देखे, अपने गौरव की परम्परा की ओर देखे। वह उस त्याग की ओर देखे जिससे मानव में पशुता पराजित हुई है और देवत्व को बल मिला है। वह उस प्रेम को देखे जिसको पाकर मनुष्य धन्य हुआ है। वह उस दान, उस त्याग और तपस्या को देखे जिससे समाज बन सका है। पथभ्रष्ट, पराजित, परमुखापेक्षी और स्वार्थ ने जिनके हृदय का रस सुखा दिया है उन पुरुषों की ओर न देखे।

अपनी ओर देखो!

जगत् में प्रेम के दान से बढ़कर कुछ नहीं है। मूर्खता में प्रायः कह दिया जाता है कि मानव में हिंसा की प्रवृत्ति स्वाभाविक है। तब क्या प्रेम की वृत्ति अस्वाभाविक है? क्या हिंसा से ही जगत् का इतना विकास हुआ है, सभ्यताएँ और संस्कृतियाँ उसी के सहारे पनपी और खड़ी हुई हैं?

प्रेम का दान

आखिर किसने आदमी को भेड़िया से आदमी बनाया? किसने उसमें महत्त्व का विस्तार किया? किसने उसमें श्रेष्ठता के संस्कार पैदा किये? क्या बिना प्रेम के दान के वह सब सम्भव होता जो आज तक हो सका है?

उस काल में, जब पुरुष जंगली, स्वच्छन्द, किसी की न सुनने वाला, अपने अहङ्कार में विस्मृत, बाधा-बंधहीन, अपने अस्त्रों पर भरोसा करने वाला था, किस अधिकार से नारी ने उसे पालतू बना लिया, किस शक्ति से उसने उसे अनुरक्त किया? किसके कौशल से उसने उन झोपड़ियों का निर्माण किया जिनमें विद्रोही और हिंसक मानव ने, अपनी सभ्यता के शैशव में, सुख की चंद घड़ियाँ बिताई होंगी?

सभ्यता के शैशव में

आज उस महाशक्ति की चिनगारी क्यों बुझ गई है ?—उस महाशक्ति की, जिसके रहस्य-ज्ञान की जिज्ञासा में पुरुष आरम्भ से भूला रहा है। आज शिथिल, असहाय, स्थान-भ्रष्ट, आत्म-विस्मृत होकर नारी कहाँ जायगी ?

बस इतना ही कहता हूँ, कहता रहा हूँ और कहना चाहता हूँ। मानव जाति की संस्कृति को जन्म देने और उसका पथ-प्रदर्शन करने के अपने गौरव से तुम वञ्चित न हो; उस मातृत्व की, मृदुल स्नेह की शक्ति से तुम वञ्चित न हो जिससे संसार में आदमी का जी सकना, एक सीमा तक, आज सम्भव हुआ है। आज मानवता के संकट काल में क्या स्नेह की वह धारा, जो कभी नहीं टूटी, समाप्त हो जायगी ? क्या तुम्हारा चिर-मंगल का दान आज समाप्त हो जायगा ? पुत्री के रूप में, बहिन के रूप में, पत्नी और जीवन-सखी के रूप में, माता के रूप में तुमने जगत् को जो दिया है, क्या उससे आज विमुख होगी ?

कान्ता, तुम समझदार हो। इन बातों को समझने और परखने की तुम्हारी उम्र है। मैं नहीं चाहता कि तुम स्त्रीत्व का विज्ञापन बनो; मैं चाहता हूँ कि तुम उसका गौरव बनो। मैं नहीं चाहता कि तुम्हारी विद्या और बुद्धि से मित्रगण चमत्कृत हों; मैं चाहता यह हूँ कि तुम्हारे द्वारा पीड़ित, दुखित, क्षुब्ध मानव को आश्वासन प्राप्त हो। मैं तुम्हें 'पुरुष' नहीं देखना चाहता; मैं तुममें श्रेष्ठ 'नारी' का विकास चाहता हूँ—ममतामयी, मंगलमयी, कल्याणमयी, जीवन और प्रकाशमयी नारी !

कान्ता ! हार्दिक आशीर्वाद के साथ इस पथ पर तुम्हारा अभिनन्दन करता हूँ।